CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री विशालकीर्ति एवं कवि श्रीचन्द्र कृत

वैराग्य समाधि प्रेरक

वैराग्यमणिमाला - द्वयी

एवं

समाधिसार:

सम्पादक, अनुवादक एवं टीकाकार

पं. (डॉ.) पन्नालाल जैन साहित्याचार्य

सन्मति ट्रस्ट
मुंबई

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री विशालकीर्तिविरचिता

वैराग्यमणिमाला

कवि श्रीचन्द्र-रचिता

वैराग्यमणिमाला

श्री त्रैविद्य सोमसेनाचार्यविरचितः

समाधिसारः

❀ संपादक, अनुवादक एवं टीकाकार ❀

पं. (डॉ.)पन्नालाल जैन साहित्याचार्य

❀ संकलन एवं संशोधन ❀

बाबूलाल जैन गोयलीय

❀ प्रस्तुति ❀

देवेन्द्र जैन

4680

सन्मति ट्रस्ट मुंबई

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१) श्री विशालकीर्तिविरचिता
वैराग्यमणिमाला

२) कवि श्रीचन्द्र-रचिता
वैराग्यमणिमाला

३) श्री त्रैविद्य सोमसेनाचार्य विरचित :
समाधिसारः

प्रकाशक : सन्मति ट्रस्ट
नरेन्द्र सदन, ४ माला,
३६ डी, मुगभाट क्रास लेन,
ठाकुरद्वार, मुंबई - ४०० ००४.

पुस्तक प्राप्तिस्थल : **१. स. सि. श्री कुन्दनलाल जैन**
विजय मेडिको, सिविल अस्पताल के सामने,
टीकमगढ़ (म.प्र.)

२. जैन साहित्य केन्द्र
पिसनहारी की मढ़िया, जबलपुर (म.प्र.)

३. अनेकांत ज्ञानमंदिर शोध संस्थान
छोटी बजरिया, अनेकांत नगर,
बीना (सागर) म.प्र. ४७०११३

लागत मूल्य : २०/-

स्वाध्याय मूल्य : १०/-

आवरण शिल्पी : सुरेश म्हात्रे, मुंबई

मुद्रक : दीप्ति इंटरप्राइजेस
सन्मति कुटीर, १३८ सी. बावड़ी चाल,
चन्दावाडी, सी.पी.टैंक, मुंबई - ४०० ००४

प्रकाशन तिथि : जनवरी २००२

प्रति : १०००

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्राक्कथन

कई वर्षों पहले श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम, अगास द्वारा प्रकाशित 'उपदेशामृत' (गुजरातीमें पू. प्रभुश्रीजीके उपदेशोंका संग्रह) बाँचते हुए वैराग्यमणिमालाके कुछ अंशोंका गुजराती अनुवाद पढ़नेमें आया। उस समय मेरे पास विशालकीर्ति-रचित जो प्रति थी उसके किसी भी श्लोकका वह अनुवाद नहीं है ऐसा लगनेपर तीव्र जिज्ञासा हुई कि इसी नामकी दूसरी भी कोई रचना होनी चाहिए। सद्‌भाग्यसे प्रयत्न करते और संदर्भ ढूँढ़ते हुए दूसरी प्रति कवि श्रीचन्द्र द्वारा रची गई प्राप्त हुई जो बहुत वर्षों पूर्व श्री माणिकचन्द्र दि.जैन ग्रन्थमालाके १३वें गुच्छक तत्त्वानुशासनादि संग्रहमें पहले ही छप चुकी है जो मूलरूपसे संस्कृतमें है।

तीन रचनाओं (दो वैराग्यमणिमाला और एक समाधिसार) के संग्रहरूप इस ग्रन्थमें श्री विशालकीर्तियति-रचित 'वैराग्यमणिमाला' को लिया है। श्री विशालकीर्तिका कोई परिचय हमें नहीं मिल पाया है। 'भ. महावीर और उनकी आचार्य परम्परा' भाग-४, पृ. ३२२ पर मराठी रचनाकारोंके नामोंमें विशालकीर्तिका उल्लेख हुआ है, जहाँ शक सं.१७२१ में उन्होंने केवल धर्मपरीक्षा नामक ग्रन्थकी रचना की ऐसा लिखा है। वैराग्यमणिमालाका कोई उल्लेख नहीं है। हो सकता है इन विशालकीर्तिने वैराग्यमणिमालाकी रचना भी की हो। ग्रन्थके अंतिम श्लोकमें 'विशालकीर्तियतिना विद्यानन्दोदयार्थिना' लिखा है अतः कोई भी विशालकीर्तियति इसके रचनाकार हैं ही परन्तु उनका विशेष परिचय प्राप्य नहीं है। नागौरके भट्टारकोंकी नामावलीमें सं.१६०१ में हुए विशालकीर्तिका भी उल्लेख पृ.४४३ पर इसी ग्रन्थमें हुआ है। विचार करनेपर वैराग्यमणिमाला इनकी रचना होना अधिक सम्भव है।

दूसरी वैराग्यमणिमाला कवि श्रीचन्द्रकी है। इसके प्राप्यस्रोतका उल्लेख हमने ऊपर किया ही है। बादमें इसीका प्रकाशन भारतीय जैन सिद्धान्त प्रकाशिनी संस्था, कलकत्ताके आधीन सनातन जैन ग्रन्थमालाके अन्तर्गत-प्रकाशित ग्रन्थत्रयीमें अनुक्रम २० से पं. लालारामजी शास्त्रीके हिन्दी अनुवाद सहित वीरनिर्वाण सं. २४४७ में हुआ था। श्रीमान् पण्डितजीने लिखा है कि 'कवि श्रीचन्द्र भ. श्रुतसागरसूरिके शिष्य थे और श्रुतसागरसूरि भट्टारक विद्यानंदिके शिष्य थे। उनका समय विक्रमकी १६वीं शताब्दी है। श्रीचन्द्र कविकी अन्य कोई रचना देखनेमें नहीं आई।'

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पं. लालारामजी शास्त्रीके भाषानुवादको ही हमने अपने संकलनमें कुछ संशोधनके साथ लिया है अत: उस आत्माका हम परोक्ष उपकार मानते हैं ।

'समाधिसार' के कर्ता श्री त्रैविद्य सोमसेनाचार्यके सम्बन्धमें भी किसी प्रकारकी जानकारी नहीं मिली है । उनकी यह रचना उच्च कोटिकी है । पहली वैराग्यमणिमाला और समाधिसारके सम्पादक अनुवादक पं. पन्नालालजी साहित्याचार्यने कृतिके बारेमें अनुमान प्रकट किया है कि समाधिसारके रचयिता श्री सोमसेनाचार्यके सामने सम्भवत: 'योगप्रदीप' ग्रन्थ रहां हो ।

प्रस्तुत ग्रन्थके प्रकाशनका मुख्य श्रेय हम श्री दि. जैन समाज, आनन्दपुर-कालू (पाली) राजस्थानको देना चाहते हैं जिन्होंने वि. सं.२०३५ में नागौरके ग्रन्थभण्डार और अनेक साधु-सन्तोंके सहयोग / प्रयाससे 'संबोधपंचास्तिकादिसंग्रह' प्रकाशित कराया एवं जिसकी सम्पन्नतामें सागर निवासी श्रीमान् पं. पन्नालालजी साहित्याचार्य का उन्हें पूरा सहयोग मिला । उनका प्रकाशन ही हमारे इस प्रकाशनका प्रेरणास्त्रोत बना है । एक ही नामसे दो वैराग्यमणिमालाका प्राप्त होना तो इसमें प्रमुख कारण है ही ।

संतोष और आनन्दकी बात है कि परमोपकारी महान् आचार्यों द्वारा निबद्ध एवं वर्तमानमें उपलब्ध सत्श्रुत किसी भी आत्मार्थी-मुमुक्षुको मुक्तिमार्ग पाने के लिए पर्याप्त-पर्याप्त है । तत्त्वनिर्णय और साधनाकी पूरी सामग्री विद्यमान है । नमनके पात्र साधकगण आज भी उसका उपयोग कर ही रहे हैं । यह अनन्या वीतरागवाणी परम आदरणीया है, वन्दनीया है । यहाँपर खेदका विषय यही है कि कालके प्रवाहमें सैंकड़ों-हजारों सत्श्रुत-रचनाकार प्रभावक महात्माओंके देह-नाम एवं उनकी उत्तम रचनाओंका समूह बिखर गया है, इतिहासके पन्नोंसे जुड़ नहीं पाया । अत: यथासम्भव अनुसंधान और श्रुतसंरक्षणका विशिष्ट कार्य आत्मसाधना करते हुए भी सहजभावसे अवश्य होता रहना चाहिए जिससे साधना को बल ही मिलेगा, अधिक उल्लास जागेगा ऐसा मैं मानता हूँ । नि:संदेह संतोंके कथन में आराधनकी मुख्यता है ।

आशा है पाठकगण इस संकलनका समुचित लाभ उठायेंगे ।

अन्तमें सहयोगी बन्धु श्री देवेन्द्र जैनका मैं आभारी हूँ जिनके उत्साहसे चिर-इच्छित वैराग्य-समाधिप्रेरक इन रचनाओंका प्रकाशन हो सका है ।

बाबूलाल जैन गोयलीय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रस्तुत संस्करण एवं संदर्भ

कहते हैं समय के पंख होते हैं, पांव नहीं । हम कितना ही तेज चलें समय आगे निकल जाता है । समय के कंधे से कंधा मिला कर चलना भी सभी चाहते हैं पर क्या सभी ऐसा कर पाते हैं ? नहीं । लेकिन एक बात निश्चित है समय से बहुत पिछड़े हुए लोगों की अपेक्षा ऐसे कर्मठजन अधिक स्मरणीय होते हैं जो समय के निकट तक पहुँच जाते हैं ।

हमारे पिताश्री पूज्य कुन्दनलालजी ऐसे ही एक कर्मठ तपस्वी थे । काल से हमारी दूरी जितनी अधिक है, उनकी उतनी ही कम थी । घटनाओं और परिस्थितियों के जंगल से मुक्त होकर प्रशस्त पथ पर निकल पाना, उनके लिए बहुत कठिन नहीं होता था ।

धर्म की विधाओं को उन्होनें जिया था । एक आस्था थी कि वे निरंतर ही नियम और योग पूर्वक जैन पुस्तकों के प्रकाशन प्रसारण में तन-मन-धन से जुटे रहे । यह उनकी बौद्धिकता ही थी कि पांचों प्रमुख जैन स्तोत्र तथा श्री परमश्रुत प्रभावक मंडल, श्रीमद् राजचन्द्र शास्त्रमाला द्वारा (अब श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम, अगास द्वारा संचालित) सभी महत्त्वपूर्ण ग्रंथ उल्लेखनीय रूप से प्रकाशित, वितरित, लोकप्रिय एवं समादृत हो सके ।

भगवान महावीर के २५०० निर्वाण महोत्सव के अवसरपर राजर्षि अमोघ वर्ष कृत ''प्रश्नोत्तर रत्न मालिका'' का प्रकाशन गुजराती अनुवाद सहित प्रकाशित किया था । भगवान महावीर के २६०० वे जन्म कल्याणक वर्ष के निमित्त हम एक श्री विशाल कीर्ति रचित तथा दूसरी कवि श्री चन्द्र विरचित वैराग्यमणिमाला तथा श्री त्रैविद्य सोमसेनाचार्य लिखित समाधिसार प्रकाशित कर रहे हैं ।

सन्मति ट्रस्ट की स्थापना में मेरी धर्मपत्नी श्रीमती सुधा जैन का विशेष सहयोग है । मुंबई महानगरपालिका में अध्यापिका का पद से स्वैच्छिक सेवा निवृत्ति लेने के बाद मुंबई महानगरपालिका के ५१ माध्यमिक शालाओं के हिन्दी एवं मराठी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

माध्यम के उन छात्रों को सम्मानित करने की योजना बनाई है जिन्हें दसवीं कक्षा में मराठी एवं हिन्दी भाषा में सर्वाधिक अंक मिले हों । तथा उन अध्यापको कों भी सम्मानित करना है । जिनके छात्र इन दो विषयों में सर्वाधिक उत्तीर्ण हुए हों । उपर्युक्त योजना सन २००१ मार्च की परिक्षाओं में उत्तीर्ण छात्रों से प्रारंभ की जा चुकी है ।

सन्मति ट्रस्ट की नियमावली बनाने में प्रसिद्ध कानूनविद, समाज सेवी श्री जयदेव सिंघनियां का विशेष सहयोग रहा है सन्मति ट्रस्ट उनका कृतज्ञ रहेगा ।

प्रस्तुत संस्करण के प्रकाशन में नडियाद निवासी श्रुत प्रेमी श्री चीमनभाई गोरधनभाई देसाई, श्रीमती कुसुम रोहितकुमार शाह, वडोदरा, श्री महेशकुमार कचरालाल वखारिया तथा कु. दीप्ति देवेन्द्र जैन का आर्थिक सहयोग है हम उनका आभार मानते हैं ।

सत्पुरुषों के योगबल से
जगत का कल्याण हो ।

- देवेन्द्र कुन्दनलाल जैन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५६४०

श्रीविशालकीर्तिविरचिता

वैराग्यमणिमाला

मंगलाचरण

वसंततिलका

आनन्दचिन्मयसुधारसपानतृप्तः,
शुद्धोपयोगमहिमानमुपागतश्च ।
कैवल्यबोधभरिताद्भुतधामधन्यः,
पायात्पवित्रितजगत्परमात्मराजः ।।१।।

अन्वयार्थ - (आनन्दचिन्मयसुधारसपानतृप्तः) आनन्दस्वरूप चैतन्यामृतके पानसे तृप्त होनेवाले **(शुद्धोपयोगमहिमानं उपागतः)** शुद्धोपयोगके माहात्म्यको प्राप्त करनेवाले **(कैवल्यबोधभरिताद्भुतधामधन्यः)** प्रशस्त तथा अद्भुत केवलज्ञानरूपी तेजसे परिपूर्ण **(च पवित्रितजगत्परमात्मराजः)** तथा सम्पूर्ण जगत्को पवित्र करनेवाले परमात्मराज (सम्पूर्ण जगत्की) **(पायात्)** रक्षा करें ।।१।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शार्दूलविक्रीडितम्

चिद्रूपामृतवाहिनीपरिलसत्कैवल्यसत्कैरवं,
शुद्धध्यानमरन्दबिन्दुलहरीलीलालसत्कर्णिकम् ।
सत्सम्यक्त्वमृणालमण्डितवपुश्चारित्रनालाञ्चितं,
योगीन्द्रभ्रमरौघसेवितमिदं पायादपायात्सदा ।।२।।

अन्वयार्थ - (चिद्रूपामृतवाहिनीपरिलसत्) चैतन्यरूपी अमृतगङ्गामें सुशोभित **(शुद्धध्यानमरन्दबिन्दुलहरीलीलालसत्कर्णिकम्)** शुक्लध्यानरूपी परागकणोंसे शोभायमान कर्णिकावाला **(सम्यक्त्वमृणालमण्डितवपु:)** सम्यक्त्वरूपी मृणालसे मण्डित है देह जिसकी **(चारित्रनालाञ्चितं)** चारित्ररूपी नालसे युक्त **(योगीन्द्रभ्रमरौघसेवितं)** योगीन्द्ररूपी भ्रमरसमूहसे सेवित **(इदं कैवल्यसत्कैरवं)** ऐसा यह केवलज्ञानरूपी चन्द्रविकासी श्वेतकमल **(अपायात्)** धर्मके विरोधी कारणोंसे **(सदा पायात्)** सदैव (हमारी) रक्षा करे ।।२।।

ज्योतिश्चिन्मयकौमुदीप्रणयिनी सद्दृष्टिरुज्जृम्भते,
शुद्धध्यानसुधासरित्प्रविलसत्यानन्दसंदायिनी ।
चारित्रामृतवार्धिवीचिपटली संवर्धते मोदिनी,
चिद्रूपामृतदीधितेरुदयतो योगीन्द्रपूर्वाचले ।।३।।

अन्वयार्थ - (योगीन्द्रपूर्वाचले उदयत: चिद्रूपामृतदीधिते:) योगीन्द्ररूपी उदयाचलपर उदय होनेवाले चैतन्यरूपी चन्द्रसे **(ज्योति:चिन्मयकौमुदीप्रणयिनी सद्दृष्टि:)** चैतन्य ज्योतिरूपी कौमुदीसे स्नेह करनेवाली समीचीन दृष्टि (सम्यक् दर्शन) **(उज्जृम्भते)** वृद्धिको प्राप्त होती है; **(आनन्दसंदायिनी शुद्धध्यानसुधासरित् प्रविलसति)** आनन्द प्रदान करनेवाली शुक्लध्यानरूपी अमृतगङ्गा शोभायमान होती है **(मोदिनी चारित्रामृतवार्धिवीचिपटली संवर्धते)** तथा चारित्ररूपी सुधासागरकी उल्लास उत्पन्न करनेवाली तरंगोंका समूह वृद्धिंगत होता है ।।३।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भेदज्ञानसुधासरित्प्रणयिनीं संवर्धयन् सर्वदा,
चिद्रूपामृतचन्द्रिकां दिशि दिशि प्रोल्लासयन्नञ्जसा ।
योगीन्द्राद्भुतबोधि-कैरवलतां प्रोत्फुल्लयन्नादरा-
च्छुद्धानन्तचतुष्टयामृतनिधिः प्रोज्जृम्भते पार्वणः ।।४।।

अन्वयार्थ - (भेदज्ञानसुधासरित्प्रणयिनी सर्वदा संवर्धयन्) भेदज्ञानकी अमृतगंगारूपी वल्लभाको सदैव समृद्ध करता हुआ **(चिद्रूपामृतचन्द्रिकां दिशि दिशि अञ्जसा प्रोल्लासयन्)** चैतन्यरूप अमृत-ज्योत्स्नाको दशों दिशाओंमें परमार्थरूपसे प्रसारित करता हुआ **(योगीन्द्राद्भुतबोधिकैरवलतां आदरात् प्रोत्फुल्लयन्)** तथा योगियोंकी अनुपम रत्नत्रयरूपी कैरव लताको सम्मानपूर्वक विकसित करता हुआ **(पार्वणः शुद्धानन्तचतुष्टयामृतनिधिः)** शुद्ध अनन्तचतुष्टयरूपी पूर्ण चन्द्रमा **(प्रोज्जृम्भते)** उदयको प्राप्त होता है ।।४।।

ज्योतिश्चिन्मयबोधिकैरवलतामुल्लासिनीं कुर्वता,
चैतन्यामृततेजसा विदधता मुक्त्यापगामञ्जसा ।
कैवल्यामृतवार्धिवर्धनविधिं सन्धित्सता सर्वदा,
शुद्धध्यानमहीधरे विजयते चिद्रूपचन्द्रोदयः ।।५।।

अन्वयार्थ - (ज्योतिश्चिन्मयबोधिकैरवलतां उल्लासिनीं कुर्वता) चिन्मय ज्योतिकी रत्नत्रयरूपी कैरवलताको प्रफुल्लित करनेवाले **(मुक्त्यापगां अञ्जसा विदधता)** मुक्तिरूपी नदीको परमार्थसे प्रवाहित करनेवाले **(कैवल्यामृतवार्धिवर्धनविधिं सर्वदा संधित्सता)** और कैवल्यामृत समुद्रकी वृद्धिकी विधिको मिलानेवाले **(चैतन्यामृततेजसा (उपलक्षितः)** चैतन्यरूपी अमृतमय तेज़से युक्त **(चिद्रूपचन्द्रोदयः)** चैतन्यरूपी चन्द्रमाका उदय **(शुद्धध्यानमहीधरे)** शुद्धध्यानरूपी पर्वतपर **(विजयते)** जयवन्त हो रहा है ।।५।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पायं पायमपायभावरहितां चैतन्यरूपां सुधां,
नायं नायमनन्तशान्तिपदवीं चेतः स्थिरं सर्वदा ।
ध्यायं ध्यायमलङ्घ्यबोधविशदं चिद्रूपमत्यद्भुतं,
योगिन् योगविलासरञ्जितधिया साम्यं समालम्बय ।।६।।

अन्वयार्थ - (योगिन्) हे योगी **(योगविलासरञ्जितधिया)** योगक्रीड़ासे रञ्जितबुद्धिके द्वारा, **(अपायभावरहितां चैतन्यरूपां सुधां पायं पायं)** अविनश्वर चैतन्यरूपी सुधाको पी पीकर **(स्थिरं चेतः अनन्तशान्तिपदवीं नायं नायं)** स्थिरचित्तको अनन्तशान्तिका मार्ग प्राप्त करा-करा कर **(अलङ्घ्यबोधविशदं अत्यद्भुतं चिद्रूपां ध्यायं ध्यायं)** और अविनाशी ज्ञानसे विशद अत्यन्त आश्चर्यकारी चैतन्यरूपका ध्यान कर करके **(सर्वदा)** सदैव **(साम्यं समालम्बय)** समताभावका अवलम्बन कर ।।६।।

यादृग् निर्मलमूर्तिरेष वसति स्वात्मोपलब्धौ सदा,
नित्यानन्दविशुद्धचिन्मयवपुर्देहेऽपि तादृग्विधः ।
भेदं मा कुरु भद्र ! चित्तकमले सूक्ष्मेक्षया लोकय,
प्राप्तानन्तचतुष्टयामृतनिधिं स्वं शुद्धमत्यद्भुतम् ।।७।।

अन्वयार्थ - (स्वात्मोपलब्धौ यादृग् एषः निर्मलमूर्तिः सदा वसति) स्वात्मोपलब्धि पर जैसी यह निर्मलमूर्ति सदैव विद्यमान रहती है **(तादृग्विधः देहे अपि नित्यानन्दविशुद्ध-चिन्मयवपुः)** ठीक उसी प्रकारसे नित्य आनन्द और विशुद्ध स्वरूपवाली (वैसी ही मूर्ति) देहमें भी स्थित है । **(भद्र ! भेदं मा कुरु)** अतः है भद्र ! भेद मत कर **(चित्तकमले प्राप्तानन्तचतुष्टयामृतनिधिं अत्यद्भुतम् शुद्धम् स्वम् सूक्ष्मेक्षया लोकय)** अपने चित्तरूपी कमलमें प्राप्त अनन्तचतुष्टयरूप अमृतनिधिके समान अति अद्भुत निज शुद्ध स्वभावका सूक्ष्मदृष्टिसे अवलोकन कर ।।७।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वसंततिलका

रे चित्त ! किं भ्रमसि भूरिविकल्पजाले,
कार्यं कियत्तव समस्ति भवान्धकूपे ।
किं खिद्यसे विविधमानसजातदु:खै-
श्चिद्रूपमन्वहमुपैहि सुखामृताय ।।८।।

अन्वयार्थ - (रे चित्त ! भूरिविकल्पजाले भवान्धकूपे तव कियत् कार्यं समस्ति) हे चित्त ! नाना विकल्प-जालसे युक्त इस संसाररूपी अन्धकूपमें तेरा क्या कार्य है ? **(किं भ्रमसि)** तू क्यों भ्रमण कर रहा है ? **(विविधमानसजातदु:खैः किं खिद्यसे)** तथा (भ्रमण करता हुआ) मनमें उत्पन्न होनेवाले अनेक प्रकारके दु:खोंसे क्यों खिन्न हो रहा है ? (यदि सुख पाना चाहता है तो) **(सुखामृताय अन्वहं चिद्रूपं उपैहि)** सुखरूपी अमृतका पान करनेके लिए प्रतिदिन चैतन्यरूप निज आत्माका अनुभव कर ।।८।।

जीव ! त्वमेहि निजमन्दिरयोग्यवासं,
किं खिद्यसे परगृहे स्वनिवासशून्यम् ।
किं ताभ्यसि त्वमनिशं परवाससक्त-
श्चिद्रूपमाविश निजोत्तमधामरम्यम् ।।९।।

अन्वयार्थ - (जीव ! त्वं निजमन्दिरयोग्यवासं एहि) हे आत्मन् ! अपने रहने योग्य निज मन्दिरको प्राप्त कर । **(स्वनिवासशून्यम् परगृहे किं खिद्यसे)** अपने निवासके अयोग्य दूसरे घरमें क्यों दु:खी होता है ? **(परवाससक्तः (सन्) त्वम् अनिशं किं ताभ्यसि)** दूसरेके घरमें निवासकी आसक्तिसे निरन्तर क्यों दु:खी हो रहा है ? **(निजोत्तमधामरम्यम् चिद्रूपं आविश)** अपने उत्तम रमणीक चैतन्यरूपी धाममें निवास कर ।।९।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वप्नेऽपि नोपशमतामुपयासि मूढ !
भ्रान्त्वाऽऽजवंजववने बत मोहभावात् ।
भो मित्र ! मोहमवमुञ्च भजस्व शान्तिं,
शुद्धोपयोगमुपयाहि कुरु स्वकार्यम् ।।१०।।

अन्वयार्थ - (मूढ !) हे अज्ञानी ! **(आजवंजववने)** तू संसाररूपी वनमें **(बत मोहभावात्)** मोहभावसे **(भ्रान्त्वा)** भ्रमण करता हुआ **(स्वप्ने अपि)** स्वप्नमें भी **(उपशमतां न उपयासि)** शान्तिको नहीं पा सकता है अतः **(भो मित्र !)** हे मित्र ! **(मोहम् अवमुञ्च)** मोहको त्याग कर **(शान्तिं भजस्व)** शान्तिको धारण कर, **(शुद्धोपयोगं उपयाहि)** तथा शुद्धोपयोगको प्राप्त करते हुए **(स्वकार्यं कुरु)** अपनी आत्मसिद्धिका कार्य कर ।।१०।।

शार्दूलविक्रीडितम्

भ्रातः किं कुशलं तवास्ति सततं संसारघोरार्णवे,
स्वाशासातकरालबाडवलसद्धूमध्वजे मज्जतः ।
कालक्रूरमहातिमिङ्गिलगिलक्रुङ्कारघोरीकृते,
भेदज्ञानविशिष्टबोधमचिरादालम्ब्य तीरं व्रज ।।११।।

अन्वयार्थ - (भ्रातः) हे भाई ! **(कालक्रूरमहातिमिङ्गिलगिल-क्रूङ्कारघोरीकृते)** यम सरीखे क्रूर मगरमच्छोंके भीषण नादसे भयंकर **(स्वाशासातकरालबाडवलसद्धूमध्वजे)** तथा आशारूपी दुःखकी भयंकर बाड़वानलसे युक्त **(संसारघोरार्णवे)** संसाररूपी समुद्रमें **(सततं मज्जतः)** निरन्तर डूबनेवाले **(किं तव कुशलं अस्ति)** तुझको क्या कभी सुख मिल सकता है ? (अर्थात् कभी नहीं मिल सकता) अतः (यदि सुखकी कामना हो तो) **(भेदज्ञानविशिष्टबोधं)** भेदविज्ञानरूपी विशिष्टज्ञान का **(अचिरात्)** शीघ्र ही **(आलम्ब्य तीरं व्रज)** अवलम्बन कर संसार-सागरसे पार हो जा ।।११।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संसारे भ्रमता त्वयाऽतिसुचिरं किं साधितं ब्रूहि मे,
मूढाद्यापि विशिष्टबोधनिलयो दु:खार्णवान्नोद्धृत: ।
भोगक्रूरभुजङ्गवक्त्रकुहरे स्थातुं पुनर्वाञ्छसि,
शुक्लध्यानसुधाम्बुधौ न रमसे संसारदु:खापहे ।।१२।।

अन्वयार्थ - (मूढ) हे मूढ ! **(अद्य त्वया संसारे अतिसुचिरं भ्रमता किं साधितं)** आज तक संसारमें चिरकालसे भ्रमण करते हुए तूने क्या पाया है ? **(मे ब्रूहि)** जरा बता तो सही ! **(विशिष्टबोधनिलय: (सन्) अपि)** तू विशिष्ट ज्ञानका घर होते हुए भी **(दु:खार्णवात् न उद्धृत:)** दु:खरूपी सागरसे अपने आपको नहीं निकाल सका है । **(पुन: भोगक्रूरभुजङ्गवक्त्रकुहरे स्थातुं वाञ्छसि)** अब भी भोगरूपी क्रूर सर्पके मुखरूपी कुहरमें पुन: स्थित होना चाहता है परन्तु **(संसारदु:खापहे शुक्लध्यानसुधाम्बुधौ न रमसे)** संसारके दु:खको दूर करनेवाले शुक्लध्यानरूपी सुधासागरमें नहीं रमता ।।१२।।

कामोन्मादमहाभुजङ्गभयदे मिथ्यात्वमोहोदके,
क्रोधाद्युग्रतिमिव्रजप्रवितते तृष्णान्धकूपे चिरम् ।
किं मग्नोऽसि सखे ! समस्तभुवनं यत्राणुमात्रोपमं,
तस्मान्निर्गमनं समस्ति न पुन: सन्तोषयन्त्रं विना ।।१३।।

अन्वयार्थ - (सखे !) हे मित्र ! **(कामोन्मादमहाभुजङ्गभयदे)** जो कामोन्मादरूपी महासर्पसे भय प्रदान कर रहा है, **(मिथ्यात्वमोहोदके)** जो मिथ्यात्व तथा अज्ञानरूप जलसे भरा हुआ है **(कोधाद्युग्रतिमिव्रजयप्रवितते)** तथा जो क्रोधादि भयङ्कर मच्छोंके समूहसे व्याप्त है **(तृष्णान्धकूपे चिरम् किं मग्न: असि)** ऐसे तृष्णारूपी अन्धकूपमें चिरकालसे क्यों डूबा हुआ है ? **(यत्र समस्तभुवनं अणुमात्रोपमम्)** जिसमें समस्त संसार अणुके बराबर है **(पुन: तस्मात् सन्तोषयन्त्रं विना निर्गमनं न समस्ति)** उस तृष्णारूप अन्धकूपसे बाहर निकलना सन्तोषरूप यन्त्रके बिना नहीं हो सकता ।।१३।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शिखरिणी

अनादौ संसारे चिरपरिचितं विश्वमखिलम्,
त्वया धीमन् ! मोहोदयपरतया नात्मचरितम् ।
वदामः किं भ्रातस्तव निपुणबुद्धेर्निपुणतां,
चिदानन्दात्मानं परममपहायात्र रमसे ।।१४।।

अन्वयार्थ - (धीमन्) हे विज्ञ ! **(संसारे अनादौ मोहोदयपरतया त्वया अखिलं विश्वं चिरपरिचितं)** इस संसारमें अनादिकालसे मोहोदयकी परतन्त्रतासे तूने सम्पूर्ण विश्वका तो अनुभव कर लिया है **(आत्मचरितम् न)** किन्तु आत्मस्वभावका अनुभव कभी नहीं किया **(भ्रातः)** हे भाई **(निपुणबुद्धेः तव निपुणतां किं वदामः)** तुझ चतुरकी चतुरताके विषयमें क्या कहें ? क्योंकि **(परमं चिदानन्दात्मानं अपहाय अत्र रमसे)** ज्ञान, दर्शन और सुखमय आत्माको छोड़कर तू अन्यत्र रमण कर रहा है अर्थात् रागी, मोही हो रहा है ।।१४।।

शार्दूलविक्रीडितम्

अन्तस्तापविजृम्भणेन सततं कामोद्भवेनाधुना,
नो जानासि हिताहितं जडमते ! तत्रैव सक्तोऽसि किम्?
अन्तःशान्तिमुपैहि मुञ्च जडतां सम्भावय स्वात्मताम्,
नित्यं चेतसि चिन्मयप्रविमलं चिद्रूपमेकं परम् ।।१५।।

अन्वयार्थ - (जडमते) हे अविवेकी ! **(सततं अन्तस्तापविजृम्भणेन कामोद्भवेन (त्वं) अधुना हिताहितं नो जानासि)** निरन्तर अन्तस्तापको बढ़ानेवाली इच्छाओंके कारण तू आज अपने हित अहितको भी नहीं जानता है **(तत्र एव किं सक्तः असि ?)** फिर उसीमें क्यों आसक्त हो रहा है ? **(जडतां मुञ्च)** अज्ञानको छोड़, **(अन्तःशान्तिं उपैहि)** अन्तरङ्ग शान्तिको प्राप्त कर और **(चिन्मयप्रविमलं एकं परम् चिद्रूपम् स्वात्मताम्)** उत्कृष्ट, उज्ज्वल, चैतन्यरूप आत्माका **(चेतसि नित्यं सम्भावय)** चित्तमें नित्य अनुभव कर ।।१५।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हंहो चित्त ! विशालसंसृतिवने तृष्णादवाग्न्युत्कटे,
कामक्रोधकरालकेसरिकुले मूर्च्छामदाष्टापदे ।
क्रूरस्फारफणालकोलभुजगे मृत्य्वन्धकूपाकुले,
भ्रान्त्वा तत्र चिरं तवास्ति कुशलं किं भेदबोधं विना ।।१६।।

अन्वयार्थ - (हंहो चित्त !) हे चित्त **(तृष्णादवाग्न्युत्कटे)** जिसमें तृष्णारूपी उत्कट दावाग्नि धधक रही है, **(कामक्रोधकरालकेसरिकुले)** जहाँ काम और क्रोधरूपी प्रचण्ड सिंहोंका समूह है,**(मूर्च्छामदाष्टापदे)** जो परिग्रह और अष्टमदरूपी अष्टापदोंसे युक्त है, **(क्रूरस्फारफणालकोलभुजगे)** जहाँ क्रूर विशाल अजगर, सूकर और सर्प हैं तथा **(मृत्य्वन्धकूपाकुले)** जहाँ मृत्युरूपी अन्धकूप विद्यमान है ऐसे **(विशालसंसृतिवने)** विशाल संसाररूपी वनमें **(चिरं भ्रान्त्वा)** चिरकाल भ्रमणकर **(भेदबोधं विना)** भेदविज्ञानके बिना **(किं तत्र तव कुशलं अस्ति)** क्या तेरी कुशलता हो सकती है ? (अर्थात् कभी नहीं हो सकती; भोगोंसे विरक्त होकर ही तू अपना कल्याण कर सकता है, अन्यथा नहीं ।) ।।१६।।

सर्वत्राशुचिसप्तधातुकलिते बद्धे स्नसाजालकैः,
वीभत्सान्त्रसमाकुले, कृमिकुलाकीर्णे त्रिदोषाविले ।
कालक्रूरविडालपोतभयदे खेदावहे पञ्जरे,
संसक्तोऽत्र कथं शुक व्रज सखे ! चैतन्यचूतद्रुमम् ।।१७।।

अन्वयार्थ - (शुक) हे शुक ! आत्मन् ! **(सर्वत्र अशुचिसप्तधातुकलिते)** संपूर्णतः अपवित्र सप्त धातुओंसे युक्त **(स्नसाजालकैः बद्धे)** नसोंके जालसे बद्ध, **(वीभत्सान्त्रसमाकुले)** घृणास्पद आँतोंसे व्याप्त, **(कृमिकुलाकीर्णे)** कृमियोंके समूहसे समन्वित **(त्रिदोषाविले)**वात-पित्त-कफ दोषोंसे युक्त **(कालक्रूरविडालपोतभयदे)** बिल्लीके बच्चे स्वरूप क्रूर कालके भयके कारण **(खेदावहे अत्र पञ्जरे कथं संसक्तः)** खेद उत्पन्न करने वाले इस अस्थिपञ्जरमें तू क्यों आसक्त हो रहा है ? **(सखे !)** हे मित्र ! **(चैतन्यचूतद्रुमम् व्रज)** चैतन्यरूपी आम्रवृक्षका अवलम्बन ले ।।१७।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हंहो भव्यशिरोमणे ! भ्रमसि किं संसारकान्तारके,
हित्वा बोधविशिष्टरत्नममलं सर्वार्थसंसाधकम् ।
कामादिप्रभवां प्रपीय मदिरां मोहाभिधां मा पुन-
स्तत्पानं कुरु जातुचिद् गुणनिधे ! मोक्षाभिलाषोऽस्ति चेत् ।।१८।।

अन्वयार्थ - (हंहो भव्यशिरोमणे !) हे भव्य शिरोमणे ! **(सर्वार्थसंसाधकम्)** सम्पूर्ण प्रयोजनको सिद्ध करनेवाले, **(अमलं बोधविशिष्टरत्नं हित्वा)** निर्मल ज्ञानरूपी विशिष्ट रत्नको छोड़कर **(संसारकान्तारके)** इस संसाररूपी वनमें **(कामादिप्रभवां)** कामादिसे उत्पन्न होनेवाली **(मोहाभिधां मदिरां प्रपीय)** मोह-नामकी मदिराको पी पीकर तू **(किं भ्रमसि)** क्यों भ्रमण कर रहा है ? **(गुणनिधे !)** हे गुणनिधे ! **(मोक्षभिलाषः अस्ति चेत्)** यदि तू मोक्षका अभिलाषी है तो फिर **(जातुचिद् तत्पानं पुनः मा कुरु)** कभी भूलकर भी उस मोहरूपी मदिराको मत पीना ।।१८।।

भ्रातस्तत्त्वकुतूहली किल भवन् सर्वाणि तत्त्वान्यहो,
सम्भुक्तानि सदा त्वयैकपरमं चिद्रूपतत्त्वं विना ।
चिद्रूपामृतसेवने कुरु रतिं सौख्याभिलाषोऽस्ति चेत्,
लोके नूतनतत्त्वसङ्गतिरतिं बध्नाति कौतूहली ।।१९।।

अन्वयार्थ - (अहो भ्रातः) हे भाई ! **(एकपरमं चिद्रूपतत्त्वं विना त्वया)** एक उत्कृष्ट चैतन्य तत्त्वको छोड़कर तूने **(तत्त्वकुतूहली किल भवन्)** कौतूहलवश होकर **(सर्वाणि तत्त्वानि सम्भुक्तानि)** संसारके सभी तत्त्वोंका सदासे अनुभव किया है । **(सौख्याभिलाषः अस्ति चेत्)** यदि तू सुखका अभिलाषी है तो **(चिद्रूपामृतसेवने रतिं कुरु)** चैतन्यरूपी अमृतके सेवनमें प्रीति कर । **(लोके कौतूहली नूतनतत्त्वसङ्गतिरतिं बध्नाति)** प्रसिद्धि है कि कौतूहल प्रेमी जीव सदा नयी-नयी वस्तुकी सङ्गति करनेका इच्छुक रहता है ।।१९।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हंहो हंस ! विवेकता तव भुवि प्रख्यातिमुल्लासिनी,
वैशद्यं सकलातिशायि भुवने वस्त्वन्तरे दुर्लभम् ।
चातुर्यं चतुराननस्य भवतो भो मित्र ! किं ब्रूमहे,
शुद्धं चिन्मयमानसं शिवपदं हित्वा वृथा मुह्यसे ।।२०।।

अन्वयार्थ - (हंहो हंस) हे हंस (आत्मन!) **(भुवि प्रख्यातिमुल्लासिनी तव विवेकता)** संसारमें तेरी प्रसिद्धिको बढ़ानेवाली विवेकता (ज्ञान) है; **(भुवने सकलातिशायि वैशद्यं वस्त्वन्तरे दुर्लभम्)** संसारमें सभी पदार्थोंका अतिक्रमण करनेवाली जो निर्मलता तेरे पास है, वह भी अन्य पदार्थोंमें दुर्लभ है । **(भो मित्र !)** हे मित्र ! **(भवतः चतुराननस्य चातुर्यं किं ब्रूमहे)** ब्रह्मा सदृश तेरी चतुराईके बारेमें क्या कहें ? **(शुद्धं चिन्मयमानसं शिवपदं हित्वा वृथा मुह्यसे)** तू सुखके स्थान, शुद्ध चिन्मय मानसरोवरका त्यागकर व्यर्थमें क्यों मोहित हो रहा है ? (हंस के लिए - कि वह मानसरोवरको छोड़कर अन्यत्र क्यों भटक रहा है ? आत्माके लिए-कि आत्मसुखको छोड़कर विषयसुखोंमें क्यों मोहित हो रहा है ?) ।।२०।।

मंदाक्रान्ता

हंहो चित्तभ्रमर ! भवता भ्राम्यता भ्रान्तिभावाद्,
भोगासक्त्या, भववनभवद्भूरितृष्णालतासु ।
तासूद्गच्छद्विषमविषयप्रीतिपुष्पव्रजेषु,
नीत्वा कालं चिरमनवधि श्वभ्रदुःखं प्रपेदे ।।२१।।

अन्वयार्थ - (हंहो चित्तभ्रमर !) हे चित्तरूपी भ्रमर ! **(तासु उद्गच्छद्विषयप्रीतिपुष्पव्रजेषु)** विषयानुरागरूपी विविध पुष्पसमूहोंसे युक्त, **(भववनभवद्भूरितृष्णा लतासु)** संसाररूपी जलमें उत्पन्न होनेवाली तृष्णारूपी विशाल लताओंमें **(भ्रान्तिभावाद्)** भ्रान्तिके कारण **(भोगासक्त्या)** भोगासक्तिसे **(भ्रम्यता)** भटकते-भटकते **(चिरं कालं नीत्वा)** बहुत समय व्यतीत करके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(भवता अनवधि श्वभ्रदु:खं प्रपेदे) तूने मर्यादातीत नारकीय दु:खोंको प्राप्त किया है । (भोगासक्तिका फल नरक है ।) ।।२१।।

वसंततिलका

श्रान्तोऽसि संसृतिवने परितो भ्रमेण,
भो मित्र ! मोहवशतो विषयानुसङ्गात् ।
श्वभ्रादिदु:खमनुभूयमनन्तवारं,
नि:श्रेयसाय समुपैहि समाधिभावम् ।।२२।।

अन्वयार्थ - (भो मित्र !) हे मित्र ! **(संसृतिवने)** इस संसाररूपी वनमें **(मोहवशत: विषयानुसङ्गात्)** अज्ञानके कारण विषयासक्तिसे **(परित: भ्रमेण)** सर्वत्र (सब योनियोंमें) भ्रमण करते हुए, **(अनन्तवारं)** अनन्तबार **(श्वभ्रादिदु:खम्)**नरकादि दु:खोंका **(अनुभूय श्रान्त: असि)** अनुभव कर तू थक गया है, **(नि:श्रेयसाय समाधिभावम् समुपैहि)** अब तो अपनी मुक्तिके लिए समाधिभावको धारण कर ।।२२।।

शार्दूलविक्रीडितम्

प्रोत्तुङ्गाचलमस्तके वनलताकुञ्जोदरे गह्वरे,
नद्यास्तीरसमस्थले घनवने स्थित्वा समाधौ रत: ।
चिन्मुद्राङ्कितशुद्धभावविलसत्कैवल्यबोधोदय:,
सञ्जातोऽस्मि यदा तदा शमनिधिर्धन्योऽस्मि धन्यात्मनाम् ।।२३।।

अन्वयार्थ - (प्रोत्तुङ्गाचलमस्त) ऊँचे पर्वतके शिखरपर; **(वनलताकुञ्जोदरे)** वनमें लताकुञ्जके मध्य; **(गह्वरे)** गुफामें; **(नद्या: तीरसमस्थले)** नदीके किनारे किसी समस्थान पर; **(घनवने स्थित्वा)** सघनवनमें स्थित होकर; **(समाधौ रत:)** ध्यानमें तन्मय होते हुए **(यदा चिन्मुद्राङ्कितशुद्धभावविलसत्कैवल्यबोधोदय: सञ्जात: अस्मि)** मेरे यदि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चैतन्यमुद्रासे अङ्कित, शुद्धभावसे सुशोभित, केवलज्ञानका उदय हो जाय (तदा शमनिधिः धन्यात्मनाम् धन्योऽस्मि) तो सुखका कोष मैं अपने आपको पुण्यशालियोंमें पुण्यशाली समझूँगा ।।२३।।

मंदाक्रान्ता

मूलं शुद्धोपयोगः परमसमरसीभावदृक्स्कन्धबन्धः ।
शाखा सम्यक्चरित्रं प्रसृमरविलसत्पल्लवाःक्षान्तिभावाः ।
छाया शान्तिःसमन्तात्सुरभितकुसुमः श्रीचिदानन्दलीला,
भूयात्तापोपशान्त्यै शिवसुखफलिनः संश्रयो योगिगम्यः ।।२४।।

अन्वयार्थ - **(शुद्धोपयोगः मूलं)** जिस (वृक्ष) की जड़ें शुद्धोपयोगकी हैं, **(परमसमरसीभावदृक्स्कन्धबन्धः)** जिसका श्रेष्ठ समताभाव तथा श्रद्धारूपी तना है; **(शाखा सम्यक्चरित्रं)** जिसमें सम्यक्चारित्रकी शाखाएँ हैं; **(क्षान्तिभावाः प्रसृमरविलसत्पल्लवाः)** जिसमें समताभावके कोमल सुन्दर पत्ते हैं; **(समन्तात् शान्तिः छाया)** जिसकी सर्वत्र शान्तिरूपी छाया है **(श्रीचिदानन्दलीलासुरभितकुसुमः)** जिसमें श्री चिदानन्दकी क्रीड़ास्वरूप पुष्पों की सुगन्ध है; ऐसा **(योगिगम्यः शिवसुखफलिनः संश्रयः)** योगियों द्वारा प्राप्य शिवसुखरूपी वृक्षका आश्रय **(तापोपशान्त्यै भूयात्)** संसारके तापकी शान्तिके लिए हो ।।२४।।

सिद्धिश्रीसङ्गसौख्यामृतरसभरितः सच्चिदानन्दरूपः
प्राप्तः पारं भवाब्धेर्गुणमणिनिकरोद्भूरिरत्नाकरोऽपि ।
चैतन्योल्लासिलीलासमयमुपगतः प्राप्तसम्पूर्णशर्मा,
योगीन्द्रैर्बोधिलब्धः परमसमरसीभावगम्यः सुरम्यः ।।२५।।

अन्वयार्थ - **(सिद्धिश्रीसङ्गसौख्यामृतरसभरितः)** जो मुक्तिरूपी लक्ष्मी के संगसे उत्पन्न होनेवाले सुखरूपी अमृतसे भरा हुआ है: **(सच्चिदानन्दरूपः)** सत् चित् आनन्द ज्ञानानन्दरूप है; **(भवाब्धेः पारं प्राप्तः)** संसार सागरके पारको

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्राप्त है **(गुणमणिनिकरोद्भूरिरत्नाकरः अपि)** गुणरूपी मणिसमूहकी उत्पत्तिके लिए विशाल रत्नाकर समुद्रस्वरूप होकर भी, **(चैतन्योल्लासिलीलासमयम् उपगतः)** चैतन्य गुणकी उत्तम लीलाके समयको प्राप्त है **(प्राप्तसम्पूर्णशर्मा)** जिसने समस्त सुख प्राप्त कर लिया है, **(योगीन्द्रैः बोधिलब्धः)** बड़े-बड़े योगी जिसे रत्नत्रय द्वारा प्राप्त करते हैं **(सुरम्यः)** और जो अतिशय रमणीय है ऐसा **(शुद्धात्मा)** शुद्धात्मा **(परमसमरसीभावगम्यः (अस्ति))** परम समरसी भाव-मोहक्षोभसे रहित शुद्धात्म परिणतिसे प्राप्त किया जा सकता है ।।२५।।

रथोद्धता

चिन्मयभावरूपचिद्रूपसुधारसपूर्णकुम्भमयं,
केवलबोधविशदसुरसिन्धुविजृम्भणघनोदयम् ।
परमानन्दचन्द्रकिरणोज्ज्वलशान्तरसौघमन्दिरं
भावय भव्य ! चित्तकौमुदवनबोधकरं चिदात्मकम् ।।२६।।

अन्वयार्थ - (भव्य !) हे भव्य ! **(चिन्मयभावरूपचिद्रूपसुधारसपूर्ण-कुम्भमयम्)** जो ज्ञायक-भावरूप चैतन्य सुधारससे परिपूर्ण कलश-स्वरूप है, **(केवलबोधविशदसुरसिन्धुविजृम्भणघनोदयम्)** केवलज्ञानरूप निर्मल गङ्गाको वृद्धिंगत करनेके लिए घनोदयरूप है, **(परमानन्दचन्द्रकिरणोज्ज्वलशान्तर-सौघमन्दिरम्)** परमानन्दरूपी चन्द्रमाकी किरणोंके समान उज्ज्वल शान्तरससमूह मन्दिर है, तथा **(चित्तकौमुदवनबोधकरं)** चित्तरूपी कुमुदवनको विकसित करनेवाला है, ऐसे **(चिदात्मकम् (चन्द्रं) भावय)** चैतन्यरूप-ज्ञानस्वरूप चन्द्रमाकी भावना कर ।।२६।।

घनाक्षरी

समयसारसुधारसवाहिनी, समयसारसुधाकरकौमुदी ।
समयसारसुरद्रुममञ्जरी, विजयते जिनराजसमाकृतिः ।।२७।।

अन्वयार्थ - (समयसारसुधारसवाहिनी) समयसाररूपी अमृतगङ्गा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(समयसारसुधाकरकौमुदी) समयसाररूपी चन्द्रजोत्स्ना; **(समयसार-सुरद्रुममञ्जरी)** समयसाररूपी कल्पवृक्षकी मञ्जरीतुल्य **(जिनराजसमाकृतिः विजयते)** श्री जिनेन्द्र भगवान्‌का रूप सदा जयवन्त हो ।।२७।।

शार्दूलविक्रीडितम्

स्वच्छन्दं नवशल्लैकीकवलनं [१] पम्पासरोमज्जनम्,[२]
रेवाशोणविगाहनं वनलताकुञ्जोदरे क्रीडनम् ।
सानन्दं गजयूथपेन गमनं मात्रा करिण्या समं,
ध्यायेद्बालगजो यथा जिनपदद्वन्द्वं तथा मानसे ।।२८।।

अन्वयार्थ - (यथा बालगजः) जिस प्रकार हाथीका बच्चा **(स्वच्छन्दं नवशल्लकीकवलनं)** स्वच्छन्दरूपसे नवशल्लकीके भक्षणकी इच्छा करता है, **(पम्पासरोमज्जनम्)** पम्पासरोवरमें स्नान करना चाहता है, **(रेवाशोणविगाहनं)** रेवा और सोन नदीमें अवगाहन करना चाहता है, **(वनलताकुञ्जोदरे क्रीडनम्)** सघन वनमें कुञ्जोंके बीच क्रीड़ा करना चाहता है, **(गजयूथपेन, मात्रा करिण्या समं सानन्दं गमनं ध्यायेत्)** अपने साथियों के साथ; माता हथिनीके साथ सानन्द गमनकी इच्छा करता है **(तथा मानसे जिनपदद्वन्द्वं)** उसी प्रकारसे मैं भी जिनेन्द्र भगवानके चरणयुगलोंका मानसमें ध्यान करता हूँ ।।२८।।

आर्या

जन्मनि जन्मनि जिनवर ! रमताम् त्वत्पादपद्मयुगलेऽस्मिन् ।
भक्तिभ्रमरी निभृतं चिद्रूपामोदबोधकिञ्जलके ।।२९।।

अन्वयार्थ - (जिनवर !) हे जिनवर ! **(भक्तिभ्रमरी)** मेरी भक्तिरूपी भ्रमरी **(चिद्रूपामोदबोधकिञ्जलके)** चैतन्यरूपी सुगन्धसे और ज्ञानरूपी परागसे युक्त **(अस्मिन् त्वत् पादपद्मयुगले निभृतं)** आपको चरणकमलोंके युगलमें **(जन्मनि जन्मनि रमताम्)** जन्म-जन्मान्तरमें रमण करती रहे ।।२९।।

---

१ **शल्लकी** - एक वृक्षविशेष जो हाथीको बहुत प्रिय है । २ **पम्पासर** - दंडकारण्यके एक सरोवरका नाम ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मंदाक्रान्ता

श्रीमद्देवेन्द्रकीर्तिप्रभुगुणमहितः स्वामिविद्यादिनन्दो,
धीमान् श्री पूज्यपादो गुणनिधिरुदयप्राप्तकैवल्यबोधः ।
मुक्तिश्रीसौख्यसम्पत्प्रवरगुरुगणोल्लासिरत्नत्रयात्मा,
जीयात्तीर्थेश्वरोऽयं जिनपतिरखिलं शास्ति लोकं स नोऽव्यात् ।।३०।।

अन्वयार्थ - (श्रीमद् देवेन्द्रकीर्तिप्रभुगुणमहितः) इन्द्रके समान कीर्तिवाले, नायक गुणसे समन्वित, **(स्वामिविद्यादिनन्दः)** स्वकीय ज्ञानादि गुणोंकी वृद्धि करनेवाले, **(धीमान्)** ज्ञानवान, **(श्री पूज्यपादः)** पूज्य हैं चरण जिनके, **(गुणनिधिः)** गुणोंके कोष, **(उदयप्राप्तकैवल्यबोधः)** विशिष्ट अनुपम केवलज्ञानके धारक, **(मुक्तिश्री सौख्यसम्पत्प्रवरगुरुगणोल्लासिरत्नत्रयात्मा)** मुक्तिरूपी लक्ष्मी और सुखकी सम्पदाओंसे युक्त, श्रेष्ठ गुरु समूहकी वृद्धि करनेवाले, रत्नत्रयस्वरूप आत्मावाले, **(अयं तीर्थेश्वरः जिनपतिः)** तीर्थेश्वर जिनपति, **(अखिलं लोकं शास्ति जीयात्)** जो सम्पूर्ण लोकको हितका उपदेश देते हैं तथा सर्वोत्कृष्ट हैं; **(सः नः अव्यात्)** वे हमारी रक्षा करें ।।३०।।

(विशेष :- उपर्युक्त श्लोकमें आचार्य देवेन्द्रकीर्ति, स्वामी विद्यानन्दी तथा आचार्य पूज्यपाद आदि पूर्वाचार्योंका स्मरण भी किया गया है ।)

अनुष्टुप

वैराग्यमणिमालेयं रचिता सदलङ्कृतिः ।
विशालकीर्तियतिना विद्यानन्दोदयार्थिना ।।३१।।

अन्वयार्थ - (विद्यानन्दोदयार्थिना) ज्ञान और सुख की वृद्धिके अभिलाषी **(विशालकीर्थियतिना)** श्री विशालकीर्ति यतिके द्वारा **(इयं सदलङ्कृतिः वैराग्यमणिमाला रचिता)** श्रेष्ठ अलङ्कारोंसे समन्वित यह वैराग्यमणिमाला रची गयी है ।।३१।।

❀ ❀ ❀

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रीचन्द्रकवि - रचिता

वैराग्यमणिमाला

(भाषानुवाद सहित)

चिंतय परमात्मानं देवं
योगिसमूहैः कृतपदसेवं ।
संसारार्णववरजलयानं
केवलबोधसुधारसपानं ।।१।।

अर्थः- हे भव्य जीव ! तू परमात्माका चिंतवन कर । इस संसारमें परमात्मा ही सर्वोत्कृष्ट देव हैं, संसारके समस्त योगियोंके समूह उन्हीके चरण-कमलोंकी सेवा करते हैं और वे ही इस संसाररूपी महासागरसे पार करनेवाले उत्तम जहाज हैं, वे परमात्मा केवलज्ञानके द्वारा अमृतके समान पान किये जाते हैं अर्थात् उन परमात्माका साक्षात् अनुभव केवलज्ञानके द्वारा होता है ।।१।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जीव जहीहि धनादिकतृष्णां
मुंच ममत्वं लेश्यां कृष्णां
धर चारित्रं पालय शीलं
सिद्धिवधूक्रीडावरलीलं ।।२।।

अर्थः- हे जीव ! तू धनादिककी तृष्णा छोड़, ममत्वका त्याग कर और कृष्ण लेश्याको दूर हटा । इन सबका त्याग कर सम्यक् चारित्रको धारण कर और शीलका पालन कर क्योंकि इस संसारमें चारित्र और शील ही मोक्षरूपी स्त्रीका मनोरंजन करनेके लिए उत्तम लीला है । भावार्थ-मोक्षरूपी स्त्री चारित्र और शीलको पालन करनेवालेको स्वयं वरण कर लेती है ।।२।।

अध्रुवमिदमाकलय शरीरं
जननीजनकधनादि सदारं ।
वांछां कुरुषे जीव नितांतं
किं न हि पश्यसि मूढ कृतांतं ।।३।।

अर्थः- हे जीव ! तू इस शरीरको अनित्य अथवा अवश्य नाश होनेवाला समझ तथा इसके साथ-साथ माता पिता स्त्री और धन आदिको भी नष्ट होनेवाला समझ । हे जीव ! तू इनके बने रहनेकी अत्यन्त इच्छा करता है परन्तु हे मूढ ! क्या तू यमराजको नहीं देखता ? ।।३।।

बाल्ये वयसि क्रीडासक्त-
स्तारुण्ये सति रमणीरक्तः ।
वृद्धत्वेऽपि धनाशाकष्ट-
स्त्वं भवसीह नितांतं दुष्टः ।।४।।

अर्थः- हे जीव ! तू बालक अवस्थामें तो खेलकूदमें लगा रहा, तरुण अवस्थामें स्त्रीमें आसक्त रहा और वृद्ध अवस्थामें (बुढ़ापेमें) धन पानेकी आशा लगाये रहनेका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भारी कष्ट भोगता रहा। इसप्रकार तू जन्मसे मरणतक अत्यन्त दुष्टता ही धारणा किये रहा ।।४।।

का ते आशा यौवनविषये
अध्रुवजलबुद्‌बुदसमकाये
मृत्वा यास्यसि निरयनिवासं
तदपि न जहसि धनाशापाशं ।।५।।

अर्थः- अरे ! तू इस यौवन अवस्थाके बने रहनेमें क्या आशा लगा रहा है ? देख यह शरीर जलके बुदबुदाके समान अनित्य है। मरकर तुझे नरकका निवास भोगना पड़ेगा परन्तु खेद है कि तब भी तू इस धनकी आशारूपी जालका त्याग नहीं करता ।।५।।

भ्रातर्मे वचनं कुरु सारं
चेत्त्वं वांछसि संसृतिपारं ।
मोहं त्यक्त्वा कामं क्रोधं
त्यज, भज त्वं संयमवरबोधं ।।६।।

अर्थः- हे भाई ! यदि तू इस संसारसे पार होना चाहता है तो मेरे वचनोंको ही सार मान। सबसे पहिले तू मोहका त्याग कर और फिर काम क्रोधको छोड़कर संयम और सम्यग्ज्ञानको धारण कर ।।६।।

का ते कांता कस्तव तनयः
संसारोऽपि च दुःखमयो यः ।
पूर्वभवे त्वं कीदृग्भूतः
पापास्रवकर्मभिरभिभूतः ।।७।।

अर्थः- अरे ! कुछ विचार तो कर कि इस संसारमें कौन तो तेरी स्त्री है और कौन तेरा पुत्र है । यह संसार दुःखमय है । पहिले भवमें जब तू अनेक पापोंका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आस्रव करनेवाले कर्मोसे खूब जकड़ा हुआ था तब कैसा था ।।७।।

शरणमशरणं भावय सतत-
मर्थमनर्थं चिंतय नियतं ।
नश्वरकायपराक्रमवित्ते
वांछां कुरुषे तस्य हि चित्ते ।।८।।

अर्थ:- हे जीव ! संसारमें जितने शरण हैं उन सबको तू सदा अशरण समझ तथा जितने अर्थ वा पदार्थ हैं उन सबको सदा अनर्थ करनेवाले चिंतवन कर । यह पराक्रम दिखाने वाला तेरा शरीर नश्वर है अवश्य नाश होनेवाला है । क्या तू अपने हृदयमें उसीकी इच्छा करता है ? ।।८।।

एको नरके याति वराक:
स्वर्गे गच्छति शुभसविवेक: ।
राजाप्येक: स्याच्च धनेश:
एक: स्यादविवेको दास: ।।९।।

अर्थ:- यह क्षुद्र प्राणी अकेला ही तो नरकमें जाता है और विवेक सहित शुभ परिणामोंके साथ अकेला ही स्वर्गमें जाता है । यह राजा भी अकेला ही होता है, धनी भी अकेला ही होता है और विवेकरहित दास भी अकेला ही होता है ।।९।।

एको रोगी शोकी एको
दु:खविहीनो दु:खी एक: ।
व्यवहारी च दरिद्री एक:
एकाकी भ्रमतीह वराक: ।।१०।।

अर्थ:- रोगी भी अकेला ही होता है, शोक भी अकेलेको ही होता है, सुखी भी अकेला ही रहता है और दु:ख भी अकेला ही भोगता है । इसीतरह व्यवहार चलानेवाला

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भी अकेला ही होता है, और दरिद्री भी अकेला ही होता है इस प्रकार यह नीच प्राणी इससंसारमें अकेला ही परिभ्रमण करता है ।।१०।।

अथिरं परिजनपुत्रकलत्रं
सर्वं मिलितं दुःखामत्रं ।
चेतसि चिंतय नियतं भ्रातः !
का ते जननी कस्तव तातः ।। ११ ।।

अर्थः- पुत्र स्त्री और कुटुंबीजन सब अनित्य हैं और सब मिलकर दुःख देनेवाले हैं इस संसार में कौन किसकी माता है और किसका पिता है? भाई ! तू अपने चित्तमें सदा यही चिंतवन करता रह ।।११।।

भ्रातर्भूतगृहीतोऽसि त्वं
दारनिमित्तिं हिंससि सत्त्वं ।
तेनाऽघेन च यास्यसि नरकं
तत्र सहिष्यसि घोरातंकं ।।१२।।

अर्थः- हे भाई ! क्या तुझे भूतोंने पकड़ रखा है जो केवल स्त्रीकेलिए जीवोंकी हिंसा करता है देख तुझे इसी पापके कारण नरकमें जाना पड़ेगा और वहां पर घोर दुःख सहन करने पड़ेंगे ।।१२।।

विषयपिशाचासंगं मुंच
क्रोधकषायौ मूलाल्लुंच ।
कंदर्पप्रभुमानं कुंच
त्वं लुंपेन्द्रियचौरान् पंच ।। १३ ।।

अर्थः- हे प्राणी ! तू विषयरूपी पिशाचोंकी आसक्तिको छोड़, क्रोध और कषायोंको जड़मूलसे नष्ट कर, काम और मानको खंड-खंड कर डाल तथा इंद्रियरूपी पांचो चौरोंको वश कर ।।१३।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कुत्सितकुथितशरीरकुटीरं
स्तननाभी मांसादिविकारं ।
रेत:शोणितपूयापूर्णं
जघनच्छिद्रं त्यज रे ! तूर्णं ।।१४।।

अर्थ:- यह शरीररूपी कुटिया अत्यंत कुत्सित और कुथित है । स्त्रियोंके स्तन और नाभि मांसादिकके विकार हैं और जघन-छिद्र अर्थात् योनि, वीर्य, रूधिर और पीव जैसे घृणित पदार्थोंसे परिपूर्ण है इसलिए हे मूर्ख ! शीघ्र ही तू इनका त्याग कर ।।१४।।

संसाराब्धौ कालमनंतं
त्वं वसितोऽसि वराक ! नितांतं ।
अद्याऽपि त्वं विषयाऽऽसक्त:
भव तेषु त्वं मूढ ! विरक्त: ।।१५।।

अर्थ:- हे नीच ! तूने इस संसाररूपी समुद्रमें अनन्त कालतक खूब निवास किया है और आजतक विषयोंमें आसक्त रहा है । हे मूर्ख अब तो तू उनसे विरक्त हो ।।१५।।

दुर्गतिदु:खसमूहैर्भग्न-
स्तेषां पृष्टे पुनरपि लग्न: ।
विकलो मत्तो भूताविष्ट:
पापाचरणे जंतो ! दुष्ट: ।।१६।।

अर्थ:- हे जीव ! तू दुर्गतियोंके अनेक दु:खोंसे पीड़ित किया गया है तथापि तू उन्हींके पीछे लगा रहता है । हे क्षुद्र ! पापरूप आचरण करनेमें तू सदा तल्लीन रहता है इसीलिए तू दुष्ट इंद्रियज्ञानसे रहित, मदोन्मत्त और भूतोंके द्वारा पकड़ा हुआ अर्थात् पागल गिना जाता है ।।१६।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सप्तधातुमयपुद्गलपिंड:
कृमिकुलकलितामयफणिखंड:
................[१]
तदपि हि मूर्ध्नि पततियमदंड: ।।१७।।

१ 'देहोऽयं तव निंदितकुंड:' ऐसा पाठ हो सकता है । तब 'यह शरीर सात धातुओंका बना हुआ पुद्गलका पिंड है, कीड़ोंका घर है और निंदनीय है परंतु फिर भी यमराजका दंड इस पर पड़ता ही है ।' यह अर्थ होगा ।।१७।।

मा कुरु यौवनधनगृहगर्वं
तव कालस्तु हरिष्यति सर्वं ।
इंद्रजालमिदमफलं हित्वा
मोक्षपदं च गवेषय मत्वा ।।१८।।

अर्थ:- हे प्राणी ! तू यौवन धन और घर आदिका अभिमान मत कर क्योंकि यह काल तेरे इस यौवन धन आदि सबको हरण कर लेगा । यह धन, यौवन आदि सब इंद्रजालके समान निष्फल है यही समझकर हे जीव तू इनका त्याग कर और मोक्षपथकी गवेषणा कर ।।१८।।

नीलोत्पलदलगतजलचपलं
इंद्रचापविद्युत्समतरलं ।
किं न वेत्सि संसारमसारं
भ्रांत्या जानासि त्वं सारं ।।१९।।

अर्थ:- हे प्राणी ! यह संसार नीलकमलके पत्तेपर पड़ेहुए जलके समान चंचल है तथा इन्द्रधनुष अथवा बिजलीके समान क्षणभंगुर (शीघ्रही नाश होनेवाला) है । हे जीव ! यह संसार असार है ऐसा तू क्यों नहीं समझता ? तुझे भ्रान्तिसे इसमें सार दिखायी देता है ।।१९।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शोकवियोगभयैः संभरितं
संसारारण्यं त्यज दुरितं ।
कस्त्वां हस्ते दृढमिव धृत्वा
बोधिष्यति कारुण्यं कृत्वा ।।२०।।

अर्थः- हे प्राणी ! देख यह संसाररूपी वन अनेक तरहके शोक, वियोग और भयोंसे भरा हुआ है तथा अत्यन्त पापमय है । इसलिए तू इसे छोड़ । बहुत कहांतक कहा जाय ? तुझे हाथसे बडी दृढ़तासे पकडकर तथा बडी भारी करुणा कर कौन समझावेगा ? भावार्थ-समझाना आचार्योंका कर्तव्य है । जब तू अत्यन्त समझानेपर भी संसारको नहीं छोड़ता तब फिर तुझे दृढ़तासे पकड़कर भी तो कौन समझावेगा और इसप्रकार समझानेसे भी तो क्या लाभ होगा ? ।।२०।।

मुंच परिग्रहवृन्दमशेषं
चारित्रं पालय सविशेषं ।
कामक्रोधनिपीलनयंत्रं
ध्यानं कुरु रे जीव ! पवित्रं ।।२१।।

अर्थः- हे जीव ! अब तू इन समस्त परिग्रहोंके समूहोंका त्याग कर, विशेष चारित्रका पालन कर और कामक्रोधको पेलकर नष्ट कर देनेवाले यंत्रके समान पवित्र ध्यानको धारण कर ।।२१।।

मुंच विनोदं कामोत्पन्नं
पश्य शिवं त्वं शुभसंपन्नं ।
यास्यसि मोक्षं प्राप्स्यसि सौख्यं
कृत्वा शुक्लं ध्यानं सख्यं ।।२२।।

अर्थः- हे जीव ! तू कामदेवसे उत्पन्न हुए विनोदों (क्रीडाओंका) का त्याग कर और शुभ संपत्तियोंसे भरेहुए मोक्षपथको देख । इस संसारमें तेरा वास्तविक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मित्र शुक्लध्यान है । यदि तू उसे धारण करेगा तो तुझे मोक्षपद प्राप्त होगा और अनंत सुख मिलेगा ।।२२।।

आशावसनवसानो भूत्वा
कामोपाधिकषायान् हित्वा ।
गिरिकंदरगहनेषु स्थित्वा
कुरु सद्ध्यानं ब्रह्म विदित्वा ।।२३।।

अर्थः- और तू आशा आदि अंतरंग परिग्रहोंका और वस्त्रादि बहिरंग परिग्रहोंका त्याग कर तथा कर्मोंकी उपाधिसे उत्पन्न होनेवाले कषायोंको छोड़कर पर्वतोंकी अंधेरी गुफाओंमें बैठकर और परब्रह्म परमात्माका स्वरूप जानकर उत्तम ध्यान धारण कर ।।२३।।

यमनियमासनयोगाभ्यासान्
प्राणायामप्रत्याहारान् ।
धारणध्येयसमाधीन् धारय
संसाराब्धेर्जीवं तारय ।।२४।।

अर्थः- हे जीव ! तू यम, नियम, आसन और अनेक प्रकारके योगाभ्यासोंको धारण कर, प्राणायाम प्रत्याहारोंको धारण कर तथा धारण ध्येय और समाधियोंको धारण कर, इन सबको धारण कर संसाररूपी महासागरसे तू अपने जीवको पार लगा अर्थात् मोक्ष प्राप्त कर ।।२४।।

अर्हत्सिद्धमुनीश्वरसाक्षं
चारित्रं यदुपात्तं दक्षं ।
तत्त्वं पालय यावज्जीवं
संसारार्णवतारणनावं ।।२५।।

अर्थः- अरहंत, सिद्ध और मुनिराजोंकी साक्षीपूर्वक जो तूने सर्वोत्तम चारित्र

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धारण किया है उसका तू जीवनपर्यंत पालन कर, क्योंकि संसाररूपी महासागरसे पार करनेके लिए यही एक नाव है। भावार्थ-सम्यक्चारित्रको पालन किये बिना तू कभी मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता.।।२५।।

सावधिवस्तुपरित्यजनं यत्
रक्षय शुद्धमना:शुद्धं तत्।
औदास्यं शाम्यं संपालय
आशादासीसंगं वारय ।।२६।।

अर्थ:- तूने मर्यादापूर्वक जो पदार्थोंका त्याग किया है उस शुद्ध त्यागकी शुद्ध मनसे रक्षा कर तथा रागद्वेषरहित उदासीनता और शांतपरिणामरूप शमताका पालन कर और आशारूपी दासीका साथ छोड़ ।।२६।।

पर्यंकादिविधेरभ्यासं
यत्नतया कुरु योगाभ्यासं ।
दुर्धरमोहमहासितसर्पं
कीलय बोधय मर्दय दर्पं ।।२७।।

अर्थ:- हे जीव ! तू पर्यंक-आसन आदि विधिपूर्वक बड़े प्रयत्नसे योगाभ्यास कर। दुर्धर मोहरूपी बड़े भारी काले सर्पको वश कर और अभिमानको चूर-चूर कर डाल, इसप्रकार तू अपने आत्माका ज्ञान सम्पादन कर अथवा मोक्षमार्गमें चलनेकेलिए आत्माको सावधान कर ।।२७।।

पूरककुंभकरेचकपवनैः
संसारेंधनदाहनदहनैः ।
कृत्वा निर्मलकायं पूर्वं
त्वं यदि वांछसि मोक्षमपूर्वं ।।२८।।

अर्थ:- हे जीव ! यदि तू अपूर्व मोक्षपद प्राप्त करनेकी इच्छा करता है तो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संसाररूपी ईंधनको जलानेके लिए अग्निके समान पूरक, कुंभक और रेचक पवनोंके द्वारा सबसे पहिले अपने शरीरको निर्मल कर ।।२८।।

घ्राणविनिर्गतपवनसमूहं
रुंधित्वा स्फोटय कलिनिवहं ।
दशमद्वारि विलीनं कुरु त्वं
लभसे केवलबोधमनंतं ।।२९।।

अर्थः- घ्राणसे निकले हुए पवन-समूहको रोक कर पापोंके समूहको नाश कर और फिर इस पवन-समूहको दशमद्वारमें ले जाकर विलीन कर । इसप्रकार करनेसे तुझे ज्ञान प्राप्त होगा ।।२९।।

हृदयादानीय च नाभिंप्रति
वायुंतदनु च तं पूरयति ।
योगाभ्यासचतुरयोगींद्राः
पूरकलक्षणमाहुरतंद्राः ।।३०।।

अर्थः- प्रमादरहित और योगाभ्यास करनेमें चतुर ऐसे मुनिराज वायुको हृदय स्थानसे लेकर नाभितक पूरण करनेको पूरक कहते हैं ।।३०।।

नाभिसरोजे पवनं रुध्वा
स्थिरतरमत्र नितांतं बध्वा ।
पूर्णकुंभवन्निर्भररूपं
कथयतियोगी कुंभकरूपं ।।३१।।

अर्थः- उस पूरक पवनको नाभि कमलमें स्थिररूपसे रोककर जिसप्रकार पूर्ण कुंभ भरते हैं उसी प्रकार अच्छीतरह भरनेको योगी लोग कुंभक पवन कहते हैं ।।३१।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निस्सारयति शनैस्तं कोष्ठात्
पवनं यो योगीश्वरवचनात् ।
रेचकवातं योगी कथयंति
यो जीवान् मोक्षं प्रापयति ।।३२।।

अर्थः- योगीश्वरोंके वचनानुसार उस वायुको उस कोठेसे धीरे-धीरे बाहर निकालनेको योगी लोग रेचक पवन कहते हैं । यह रेचक पवन जीवोंको मोक्ष प्राप्त करानेवाली है । भावार्थ-इसप्रकार प्राणायामपूर्वक ध्यानाभ्यास करना परंपरासे मोक्षका कारण है ।।३२।।

नासामध्ये नगरचतुष्टय-
मस्ति नितांतं मूढ ! विचारय ।
तत्रोत्पत्तेर्वातचतुर्णां
संचरणां च कलय संपूर्णां ।।३३।।

अर्थः- हे मूढ ! इस नासिकाके मध्यभागमें चार नगर हैं ऐसा तू दत्तचित्त होकर भलीभाँति चिंतवन कर । उन्हीं चारों पवनोंकी उत्पत्ति होती है । इन चारों पवनोंके संचरणोंको (गमनागमनको) भलीभाँति समझ ।।३३।।

चक्षुर्विषये श्रवसि ललाटे
नाभौ तालुनि हृत्कजनिकटे
तत्रैकस्मिन् देशे चेतः
सद्ध्यानी धरतीत्यतिशांतं ।।३४।।

अर्थः- उत्तम ध्यान करनेवाला ध्याता अपने चित्त को अत्यंत शांततापूर्वक नेत्रोंमें धारण करता है, कानोमें धारण करता है, ललाट पर धारण करता है, नाभिमें धारण करता है, तालुमें धारण करता है अथवा हृदयरूपी कमलके निकट धारण करता है । इन ऊपर लिखे स्थानोमेंसे किसी एक स्थानमें धारण करता है ।।३४।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

योजनलक्षप्रमितं कमलं
संचित्यं जांबूनदविमलं ।
कोशदेशमंदिरगिरिसहितं
क्षीरसमुद्रसरोवरसहितं ।।३५।।

अर्थः- सबसे पहिले एक लाख योजन लंबा चौडा गोल जंबूद्वीपके समान एक निर्मल कमलका चिंतवन करना चाहिए । कमलकी धुडी स्थानपर मंदराचल (मेरु) पर्वतका चिंतवन करना चाहिए और वह कमल क्षीरसागररूपी सरोवरमें हैं ऐसा विचार करना चाहिए ।।३५।।

तस्योपरि सिंहासनमेकं
तत्र स्थित्वा कुरु सद्ध्यानं ।
......[१].....................
प्राप्स्यसि जीव ! शिवाऽमृतपानं ।।३६।।

अर्थः- उस कमलके ऊपर शरद ऋतुके चंद्रमाके समान निर्मल ऊंचा और मनोज्ञ एक सिंहासनका चिंतवन करना चाहिए और उस सिंहासन पर स्वयं अपने आत्माको विराजमान कर उत्तम ध्यान करना चाहिए । इस प्रकार ध्यान करनेसे हे जीवन तू शीघ्र ही मोक्षरूपी अमृतका पान करने लगेगा ।।३६।।

तदनंतरमाध्येयं रम्यं
नाभीमध्ये कमलं सौम्यं ।
षोडशपत्रप्रमितं सारं
स्वरमालान्वितपत्राऽऽधारं ।।३७।।

अर्थः- उसके बाद अपनी नाभिके मध्यभागमें एक मनोहर और सौम्य कमलका चिंतवन करना चाहिए । उस कमलके सोलह दल हों और एक एक दल पर एक एक स्वरके हिसाबसे सोलह दलों पर सोलह स्वर लिखे हों ।।३७।।

(१ 'चेतय सिद्धस्वरूपममानं' ऐसा पाठ हो सकता है ।)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रेफकलाबिंदुभिरानद्धं
तन्मध्ये संस्थाप्यं शुद्धं ।
शून्यं वर्णं सत्वंतव्यं
तेजोमयमाशं संदिव्यं ।।३८।।

अर्थः- उस कमलके मध्यभागमें अत्यन्त शुद्ध सब दिशाओंको प्रकाशित करनेवाला, अत्यंत दिव्य, और (रं) ऐसा रेफ और बिंदुसहित शून्य वर्ण अर्थात् हकार (र्हं) स्थापन करना चाहिए ।।३८।।

तस्मान्निर्यान्ती धूमाली
पश्चादग्निकणानामाऽऽली
संचित्यानुज्वालाश्रेणी
भव्यानां भवजलधेर्द्रोणी ।।३९।।

अर्थः- उस र्हं बीजाक्षरके रेफसे धूमकी पंक्ति निकल रही है उसके बाद अग्निके स्फुलिंगोंका समूह निकल रहा है और उसके बाद भव्य जीवोंको संसाररूपी समुद्रसे पार करनेके लिए नावके समान अग्निकी ज्वालाकी पंक्तियां निकल रही हैं ऐसा चिंतवन करना चाहिए ।।३९।।

ज्वालानां निकरेण ज्वाल्यं
कर्मकजाष्टकपत्रं शल्यं ।
अवतानं हृदयस्थं चिंत्यं
मोक्षं यास्यसि मानय सत्यं ।।४०।।

अर्थः- उस कमलके नीचे एक हृदयमें विराजमान ऐसे आठ दलवाले कमलका चिंतवन करना चाहिए जिसके आठो दलोंपर आठों कर्म रक्खे हों और फिर उस ज्वालाके समूहसे वह शल्यके समान आठों कर्मों सहित कमल जल रहा है ऐसा चिंतवन करना चाहिए । ऐसा चिंतवन करनेसे तुझे अवश्य ही मोक्ष प्राप्त होगा यह बात तू बिलकुल सत्य मान ।।४०।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कोणत्रितयसमन्वितकुंडं
वन्हिबीजवर्णैरविखंडम् ।
दग्धय मध्ये क्षिप्त्वा पिंडं
पश्यसि सिद्धिवधूवरतुंडं ।।४१।।

अर्थः- इसके बाद शरीरके बाहर त्रिकोण अग्निकुंडका चिंतवन करना चाहिए । वह त्रिकोण कुंड अग्निबीजाक्षर ''रं'' से परिपूर्ण हो । उस अग्निकुंडमें शरीरको स्थापनकर जलाना चाहिए अर्थात् ऐसा चिंतवन करना चाहिए । इसप्रकार चिंतवन वा ध्यान करनेसे मुक्तिरूपी स्त्रीका सुंदर मुख तुझे देखनेको मिलेगा । भावार्थ-तू शीघ्र ही मुक्त होगा । यह आग्नेयी धारणाका स्वरूप कहा ।।४१।।

आकाशं संपूर्णं व्याप्य
पृथ्वीवलयं सर्वं प्राप्य ।
वातं वातं हृदि संभारय
परमानंदं चेतसि धारय ।।४२।।

अर्थः- तदनंतर सम्पूर्ण आकाशमें व्याप्त होनेवाले तथा सम्पूर्ण पृथ्वीमंडलमें प्रवेश करते हुए वायुका चिंतवन करना चाहिए और फिर उस वायुको अपने हृदयमें धारण करना चाहिए । इसप्रकार अपने हृदयमें परमानंदको धारण करना चाहिए ।।४२।।

तेन वातवलयेनोड्डाप्यं
भस्मवृंदमनुदिनमास्थाप्यं ।।
द्वादशांतमध्ये सद्ध्यानं
कुरु सिद्धानां परमं ध्यानं ।।४३।।

अर्थः- तदनंतर चिंतवन करना चाहिए कि उस वायुसमूहने उस जलायेहुए शरीरकी भस्मको उड़ा दिया है फिर धीरे धीरे उस वायुको द्वादशांत स्थानमें ( )

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्थापन कर शांत करना चाहिए । इसप्रकार सिद्धपरमेष्ठीका परमध्यानरूप श्रेष्ठश्रद्धान करना चाहिए । यह मारुती धारणा है ।।४३।।

आकाशे संगर्जितमुदिरं
सेन्द्रचापमासारसुसारं ।
नीरपूरसंप्लावितसूरं
संरोध्येति घनाघननिकरं ।।४४।।

अर्थः- इसके बाद आकाशमें इंद्रधनुष, बिजली, बादलोंका गर्जना, बादलोंका खूब बरसना, पानीके पूरसे सूर्यका डूब जाना या बह जाना आदिका तथा बादलोंके समूहका चिंतवन करना चाहिए ।।४४।।

अर्धचंद्रपुटसमसंराधं
वारणपुरसंचित्यमबाधं ।
अमृतपूरवर्षणशशिसारं
तुष्टयोगिवप्पीहकनिकरं ।।४५।।

अर्थः- तदनंतर अर्द्धचंद्राकार निर्बाध अमृतमय जलकी वर्षासे सारभूत चंद्रमाके समान वारणपुर (वरुणमंडल) का चिंतवन करना चाहिए ।।४५।।

कांत्या स्नापितदशदिग्वलयं
दर्शनबोधवीर्यशिवनिलयं ।
चिन्मयपिंडं वर्जितवलयं
स्मर निजजीवं निर्मलकायं ।।४६।।

अर्थः- इसके बाद अपनी कांतिसे जिसने दशों दिशाओंके समूहको धो डाला है, जो दर्शन ज्ञान वीर्य और मोक्षरूप कल्याणका स्थान है, जो केवल चैतन्यस्वरूप है, गोलाई आदि आकारोंसे रहित है और जिसका शरीर अर्थात् प्रदेशोंका समूह बिल्कुल निर्मल है ऐसे अपने आत्माका चिंतवन करना चाहिए । यह वारुणी धारणा है ।।४६।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भामण्डलनिर्जितरविकोटिं
शुक्लध्यानाऽमृतसंपुष्टिं ।
तीर्थंकरपरमोत्तमदेवं
स्वात्मानं स्मर कृतसुरसेवं ।।४७।।

अर्थः- तदनंतर जिसके प्रभामंडलसे करोड़ों सूर्यकी प्रभा जीती जा रही है, जो शुक्ल ध्यानरूपी अमृतसे बहुतही पुष्ट हो रहा है और समस्त देव जिसकी सेवा कर रहे हैं ऐसा देवाधिदेव तीर्थंकर परमदेव मेरा आत्मा ही है ऐसा चिंतवन करना चाहिए यह तत्त्वरूपवती धारणा है ।।४७।।

कुंभवातेन च तं संचित्यं
ऊर्ध्वरेफसंयुक्तं नित्यं ।
सकलबिंदुनानाहतरूपं
स्थापय चित्ते छेदितपापं ।।४८।।

अर्थः- तदन्तर समस्त पापोंको नाश करनेवाला, सकल बिंदुसहित, उर्ध्वरेफसे विराजमान और सदा चिंतवन करने योग्य ऐसे अनाहत मंत्रके स्वरूपको कुंभ वातके द्वारा हृदयमें स्थापन करना चाहिए ।।४८।।

कमलमेकमारोपय चाग्रे
आरोप्य स्मर तद्दलवर्गे ।
सर्वमंत्रबीजं हृदि नितरां
कामक्रोधकषायैर्विरतं ।।४९।।

अर्थः- सामने एक कमलका चिंतवन करना चाहिए और उसके समस्त दलोंपर स्वरोंका चिंतवन करना चाहिए । काम क्रोधादि कषायोंसे रहित होकर समस्त मंत्रोंके बीजको हृदयमें सदा चिंतवन करते रहना चाहिए ।।४९।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शरदिंदोर्निर्गच्छंतं संतं
मंत्रराजमाराधय सततं ।
तालुसरोरुहमागच्छंतं
मेघाऽमृतधारावर्षंतं ।।५०।।

अर्थः- शरद ऋतुके चंद्रमासे निकलतेहुए उस मंत्रराजका सदा आराधन करते रहना चाहिए । वह मंत्रराज तालुरूपी कमलके समीप आया है और मेघरूपी अमृतकी धारा बरसा रहा है ऐसा चिंतवन करना चाहिए । इसके बाद -।।५०।।

भ्रूलतयोर्मध्ये चाऽऽरोप्यं
उड्डाप्य घ्राणाग्रे स्थाप्यं ।
पुनरुद्भ्राम्य च हृदये धार्यं
नेत्रोत्पलविषये तत्कार्यं ।।५१।।

अर्थः- उस मंत्रराजको दोनो भौंहरूपी लताओंके मध्यभागमें विराजमान करना चाहिए फिर वहांसे भी उठाकर नासिकाके अग्रभागमें स्थापन करना चाहिए फिर वहांसे उठाकर ह्रंदयमें धारण करना चाहिए और फिर उस मंत्रराजको नेत्ररूपी कमलोंमें विराजमान करना चाहिए ।।५१।।

सोमदेवसूरेरुपदेशः
कार्यश्चित्ते शुभसंवेशः ।
लंबीजाक्षरमारोप्यांते
विद्वद्भिर्मुक्त्यै नासांते ।।५२।।

अर्थः- शुभ वेष बनानेवाला अर्थात् मोक्षपद प्राप्त करा देनेवाला सोमदेव आचार्यका उपदेश अपने हृदयमें धारण करना चाहिए तदनन्तर विद्वान् लोगोंको मोक्ष प्राप्त करनेके लिए नासिकाके अंतिम भागमें 'लं' बीजाक्षर आरोपण करना चाहिए ।।५२।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एवमादिमंत्राणां स्मरणं
कुरु जीव ! त्वं तेषां शरणं ।
यत् सामर्थ्याद्विजहसि मरणं
संसाराब्धे : कुरुषे तरणं ।।५३।।

अर्थः- हे जीव ! तू इसप्रकारके और भी अनेक मंत्रोंका स्मरण कर तथा उन्हींको शरण मान क्योंकि उन मन्त्रोंके सामर्थ्यसे तेरा जन्म-मरण छूट जायगा और तू संसाररूपी महासागरसे पार हो जायगा ।।५३।।

अविचलचित्तं धारय बंधो !
यास्यसि पारं संसृतिसिंधोः ।
त्वं च भविष्यसि केवलबोधो
हंसत्वं प्राप्स्यसि शिवसिंधोः ।।५४।।

अर्थः- हे भाई ! तू स्थिर चित्त होकर उन मंत्रोंको अपने हृदयमें धारण कर, उन मंत्रोंको हृदयमें धारण करनेसेही तू संसाररूपी समुद्रसे पार हो जायगा, केवलज्ञानी अर्थात् सर्वज्ञ हो जायगा और मोक्षरूपी समुद्रमें तू हंसके समान उत्तम पदको प्राप्त होगा ।।५४।।

शुद्धरूपचिन्मयचित्पिंडं
विज्जोतिश्चिच्छक्त्योर्नीडं ।
चिद्रम्यं चित्कौमुदिचंद्रं
स्मर बोधाधिपतिं गुणसांद्रं ।।५५।।

अर्थः- हे जीव ! जो अत्यन्त शुद्ध, (चैतन्यरूप ज्योति) और चैतन्यरूप शक्तिका आधारभूत है जो चैतन्यशक्तिके द्वारा ही मनोहर है, जो चैतन्यरूप चांदनीके लिए चंद्रमा है, पूर्णताका अधिपति वा स्वामी है और जो समस्त गुणोंसे भरपूर है ऐसे परम ब्रह्म परमात्माका तू चिंतवन कर ।।५५।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निर्मलचिद्रूपामृतसिंधुं
शुक्लध्यानांबुजकजबंधुम् ।
सिद्धिवधूसरसीवरहंसं
पश्य शिवं शांतं च निरंशं ।।५६।।

अर्थः- हे जीव! यह मोक्ष निर्मल चैतन्यरूप अमृतका समुद्र है शुक्लध्यानरूपी कमलके लिए सूर्य है, मुक्तिस्त्री रूपी सरोवरीके लिए उत्तम हंस है, अत्यन्त शांत है और निरंश वा अखंडस्वरूप है ऐसे मोक्षको तू देख ।।५६।।

ज्ञानार्णवकल्लोलकलापे
क्रीडति योऽजस्रं शिवरूपे ।
नवकेवललब्धिभिरापूर्णः
सेव्यंते मुनिभिर्गतवर्णः ।।५७।।

अर्थः- जो सब प्रकारके वर्णोंसे रहित है, नौ केवललब्धियोंसे परिपूर्ण है और ज्ञानरूपी महासागरकी लहरोंके समूहरूप मोक्षके स्वरूपमें जो सदा क्रीडा करता रहता है उसकी मुनिलोग भी सेवा करते हैं ।।५७।।

केवलकैरविणीविप्रेशं
मुक्तिकामिनीकर्णावतंसं ।
त्रिभुवनलक्ष्मीभालविशेषं
लब्धिसौधरत्नानां कलशं ।।५८।।

शिरहंसीसंगमसस्नेहं
अष्टगुणोपेतं च विदेहं ।
बोधिसुधारसपानपवित्रं
साम्यसमुद्रं त्रिभुवननेत्रं ।।५९।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनाद्यखंडाचलसद्वेद्यं
योगिवृंदवृंदारकवंद्यं ।
हरिहरब्रह्मादिभिरभिवंद्यं
केवलकल्याणोत्सवहृद्यं ।।६०।।

श्रुतशैवलिनीसुरगिरिविधुरं
निःश्रेयसलक्ष्मीकरमुकुरं ।
कर्म्ममहीधरभेदनभिदुरं
श्यामश्रीग्रीवालंकारं ।।६१।।

व्योमाकारं पुरुषमरूपं
निर्वापितसंसृतिसंतापं ।
वर्जितकामदहनसंपातं
त्रिभुवनभव्यजीवहिततातं ।।६२।।

इत्यादिकगुणगणसंपूर्णं
चिंतय परमात्मानं तूर्णं ।
अष्टप्रवचनमातुः पितरं
पारीकृताजवंजवपारं ।।६३।।

अर्थः- तदनंतर हे जीव ! तू शीघ्रताके साथ ऐसे परमात्माका चिंतवन कर जो कि केवल ज्ञानरूपी कुमुदिनियोंके प्रफुल्लित करनेकेलिए चंद्रमा हैं, मुक्तिरूपी स्त्रीके कानोंके आभूषण हैं, तीनों लोकोंकी सुशोभित करनेवाली लक्ष्मीके मस्तकको तिलक स्वरूप हैं, नौ केवल लब्धिरूपी रत्नोंके बनेहुए राजभवनके लिए कलश हैं, और मोक्षरूपी हंसिनीके साथ समागम करनेके लिए स्नेहरूप हैं । जो सम्यक्त्व आदि आठों गुणोंसे सुशोभित हैं, शरीररहित हैं, रत्नत्रयरूपी अमृतरसके पीनेसे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जो अत्यन्त पवित्र हैं, जो समताभावोंके समुद्र हैं और तीनों लोकोंके नेत्र हैं। जिनका सद्वेद्य अर्थात् सुख अनादि है अखंड है और अचल है। जो योगियोंके समूह द्वारा वंदनीक हैं। हरिहर ब्रह्मा आदि भी जिन्हें नमस्कार करते हैं, जो केवलज्ञानके कल्याणोत्सव होनेसे ही मनोहर हैं, जो द्वादशांग वाणीरूपी नदीको प्रकट करनेके लिए सुमेरू पर्वत हैं, मोक्षरूपी लक्ष्मीको प्रसन्न करनेके लिए हाथकी आरसी हैं, कर्मरूपी पर्वतको चूर्ण करनेके लिए वज्र हैं और मोक्षरूपी लक्ष्मीके गलेका हार हैं। जो केवल आकाशके आकारस्वरूप हैं, पुरुषाकार हैं, अरूपी हैं। जिनके संसारसंबंधी संताप सब नष्ट हो गये हैं, जो कामाग्निके प्रवेशसेभी रहित हैं और जो तीनों लोकके भव्य जीवोंका हित करनेके लिए पिताके समान हैं। इत्यादि अनेक गुणोंके समूहसे जो परिपूर्ण हैं, जो अष्ट प्रवचन मातओंको (श्रुतज्ञानको) प्रकट करनेके लिए पिताके समान हैं और जो संसारके किनारेको भी उल्लंघन कर चुके हैं अर्थात् संसारसे सर्वथा पार हो चुके हैं ऐसे परमात्माका तू शीघ्र ही चिंतवन कर ।।५८-६३।।

निजदेहस्थं स्मर रे मूढ
त्वं नो चेद् भ्रमिष्यसि गूढः ।
मूर्खाणां मध्ये त्वं रूढः
त्वं च भविष्यस्यग्रे षंढः ।।६४।।

अर्थः- अरे मूर्ख ! तू अपने आत्मामें विराजमान परमात्माका चिंतवन कर। यदि तू उस अपने शरीरमें विराजमान परमात्माका चिंतवन न करेगा तो तू इस संसारमें बहुत परिभ्रमण करेगा, मूर्खोंमें भी तू प्रसिद्ध गिना जायगा और आगे चलकर तू नपुंसक अर्थात् कर्तव्यहीन हो जायगा ।।६४।।

एकमनेकं स्वं संभारय
शुद्धमशुद्धं स्वं संतारय ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लक्ष्यमलक्ष्यं स्वं संपारय
कर्मकलंकं त्वं संदारय ।।६५।।

अर्थः- हे जीव ! तू अपने आत्माको एक और अनेकरूप चिंतवन कर तथा शुद्ध और अशुद्ध रूप चिंतवन कर उसे संसारसे पार लगा । तू अपने लक्ष्य तथा अक्षयस्वरूप आत्माको प्राप्त कर और कर्मरूप कलंकको विदीर्ण कर ।।६५।।

बद्धमबद्धं रिक्तमरिक्तं
शून्यमशून्यं व्यक्ताऽव्यक्तं ।
रुष्टमरुष्टं दुष्टादुष्टं
शिष्टमशिष्टं पुष्टाऽपुष्टं ।।६६।।

अंतर्भेदज्ञानविचारैः व्यवहारव्यहारासारैः ।
वर्ण्यंते देहस्थं पुरुषैर्विषयविरक्तैर्ज्ञानविशेषैः ।।६७।।

अर्थः- जिनके अंतरंगमें भेदज्ञानका विचार है जो व्यवहारनय और निश्चयनयको अच्छी तरह जानते हैं जो विषयोंसे विरक्त हैं और जो विशेष ज्ञानको धारण करनेवाले हैं ऐसे महापुरुष इस शरीरमें विराजमान आत्माको कर्मोंसे बँधा हुआ, कर्मोंसे रहित, रागद्वेषादि विकारोंसे रहित तथा सहित, मूर्त तथा अमूर्त, व्यक्त तथा अव्यक्त, रागी तथा विरक्त, पापी तथा पापरहित, सज्जन तथा दुर्जन और चिदानंदामृतसे पुष्ट तथा उससे रहित वर्णन करते हैं ।।६७।।

विरम विरम बाह्यादिपदार्थे
रम रम मोक्षपदे च हितार्थे ।
कुरु कुरु निजकार्यं च वितंद्रः
भव भव केवलबोधयतीन्द्रः ।।६८।।

अर्थः- हे जीव !अब तू पुत्र स्त्री धनादिक बाह्य पदार्थेंसे विरक्त हो, विरक्त हो । आत्माका हित करनेवाले मोक्षस्थानमें क्रीडा कर - क्रीडा कर, प्रमादरहित

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होकर अपना कार्य (आत्माका कल्याण) शीघ्र कर, शीघ्र कर और केवलज्ञानसे सुशोभित होकर मुनियोंका स्वामी शीघ्रसे शीघ्र हो ।।६८।।

मुंच मुंच विषयाऽमिषभोगं
लुंप लुंप निजतृष्णारोगं ।
रुंध रुंध मानसमातंगं
धर धर जीव विमलतरयोगं ।।६९।।

अर्थः- हे जीव ! तू विषयरूपी मांसका भोग छोड़ छोड़, अपने तृष्णारूपी रोगको हटा दूर हटा, मनरूपी हाथीको रोक तथा वश कर और अपने अत्यंत निर्मल योगको धारण कर, शीघ्र धारण कर ।।६९।।

चिंतय निजदेहस्थं सिद्धं
आलोचय कायस्थं बुद्धं ।
स्मर पिंडस्थं परमविशुद्धं
कल केवलकेलीशिवलब्धं ।।७०।।

अर्थः- हे जीव ! तू अपने शरीरमें विराजमान सिद्ध भगवानका चिंतवन कर, शरीरमें विराजमान परम ज्ञानस्वरूप शुद्ध आत्माकी आलोचना कर तथा शरीरमें ही विराजमान परम विशुद्धस्वरूप चिदानंदका स्मरण कर और केवलज्ञानरूपी क्रीडाके द्वारा प्राप्त हुए मोक्षस्थानको प्राप्त हो ।।७०।।

वैराग्यमणिमालेयं रचिता सप्ततिप्रमा ।
ब्रह्मश्रुताब्धिशिष्येण श्रीचंद्रेण मुमुक्षुणा ।।७१।।

अर्थः- इसप्रकार मोक्षकी इच्छा रखनेवाले ब्रह्म श्रुतसागरके शिष्य श्रीचंद्रने सत्तर श्लोकोंमें यह वैराग्यमणिमाला बनायी ।

इसप्रकार श्रीचंद्रकी बनायी हुई यह वैराग्यमणिमाला समाप्त हुई ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री त्रैविद्य सोमसेनाचार्यविरचितः

समाधिसारः

टीकाकारका मंगलाचरण

उपजाति

शुद्धात्मतत्त्वं जगदेकसारं ।
संप्रापितागाधभवाब्धिपारम् ।।
नत्वा धृतानन्तसुबोधभारं ।
समाधिसारं विवृणोमि सारम् ।।

अनुष्टुप

यावन्न ग्रसते कालो यावन्नाभ्येति ते जरा ।
यावन्न क्षीयते चायुस्तावत् कल्याणमाचर ।।१।।

अर्थः- हे आत्मन् ! जबतक काल तुझे नहीं ग्रसता है, जब तक तेरी वृद्धावस्था नहीं आती है और जबतक तेरी आयु क्षीण नहीं होती है, तबतक तू कल्याणका आचरण कर ।।१।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किं करोमि क्व गच्छामि क्व चायातोऽस्मि सांप्रतम् ।
को बन्धुर्ममकस्याहमीत्यात्मानं विचारयेत् ।।२।।

अर्थ:- मैं क्या कर रहा हूं ? कहां जा रहा हूँ ? इस समय कहांसे आया हूं ? मेरा कौन बंधु है ? और मैं किसका बंधु हूं ? इसप्रकार अपने आपका विचार करना चाहिए ।।२।।

पुरुषास्तीर्थमिच्छन्ती किं तीर्थैः क्लेशदायकैः ।
धर्मतीर्थ शरीरस्थं सर्वतीर्थाधिकं महत् ।।३।।

अर्थ:- मनुष्य तीर्थकी इच्छा करते हैं, परंतु क्लेश देनेवाले तीर्थोंसे क्या प्रयोजन है ? शरीरके भीतर स्थित धर्मरूपी तीर्थ ही सब तीर्थोंसे अधिक बड़ा तीर्थ है ।

भावार्थ:- यहाँ आत्माकी ओर लक्ष्य देनेके लिए उसे ही सबसे बड़ा तीर्थ कहा है । व्यवहारसे तीर्थवंदना आदि शुभोपयोगके कार्य भी उपादेय हैं, ऐसा भाव ग्रहण करना चाहिए ।।३।।

इदं तीर्थमिदं तीर्थमिति ज्ञात्वा भ्रमन्ति ये ।
ज्ञानध्यानविहीनास्ते सतां तीर्थं न वै बहिः ।।४।।

अर्थ:- यह तीर्थ है, यह तीर्थ है, ऐसा जानकर जो भ्रमण करते हैं वे ज्ञान तथा ध्यानसे विहीन हैं । निश्चयसे सत्पुरुषोंका तीर्थ बाहर नहीं है ।।४।।

आजन्मोपार्जितं सर्वं भक्षयेत्कायसंस्थितः ।
केनापि दृश्यते नैव स्वात्मनः पश्यतोहरः ।।५।।

अर्थ:- शरीरके भीतर रहनेवाला अपने आत्माका चोर - रागादिक भाव, जन्मसे लेकर उपार्जित-संचित समस्त शुभ कर्मको नष्ट कर देता है । यह रागभाव-रूपी चोर किसीके द्वारा दिखायी नहीं देता ।।५।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लोकैर्विलोक्यते चौरो गते स्वल्पेऽपि वस्तुनि ।
सर्वस्वहरमात्मीयं मनः पश्यन्ति नो जनाः ।।६।।

अर्थः- अत्यन्त स्वल्प वस्तुके चले जानेपर लोग चोरको देखते हैं-उसकी खोज करते हैं, परन्तु अपने आपका सर्वस्व हरण करनेवाले मनरूपी चोरको लोग नहीं देखते हैं ।।६।।

तत्सामायिकदीपेन कायदुर्गसमाश्रितः ।
अन्यैराच्छादितः स्वात्मा यथावस्थो विलोक्यताम् ।।७।।

अर्थः- जो अपना आत्मा शरीररूपी दुर्गमें रह रहा है, तथा अन्य द्रव्य कर्मोंके द्वारा आच्छादित हो रहा है फिर भी स्वभावदृष्टिसे अपने स्वरूपमें स्थित है उसे सामायिकरूपी दीपकके द्वारा देखना चाहिए ।

भावार्थः- शरीरके भीतर रहनेवाला संसारी जीवका आत्मा यद्यपि कर्म और नोकर्मसे आच्छादित हो रहा है तथापि वह द्रव्यदृष्टिसे यथावस्थ है, अपने ज्ञाता-दृष्टा स्वभावमें अवस्थित है । उस आत्माका साक्षात्कार ज्ञानोपयोगकी अन्तर्मुखी प्रवृत्तिरूपी समाधिसे ही हो सकता है अतः अपने ज्ञानका ज्ञेय उसी आत्माको बनाना चाहिए ।।७।।

आत्मैव सुप्रसन्नोऽयं सुगतिः परिकीर्तितः ।
अप्रसन्नः पुनश्चैव दुर्गतिः स्यान्न संशयः ।।८।।

अर्थः- रागादि विकारी भावोंका अभाव होनेसे अतिशय प्रसन्नता-सातिशय निर्मलताको प्राप्त हुआ यह आत्मा ही उत्तम गति कहा गया है और रागादि विकारी भावोंके आक्रमणसे अप्रसन्नता-मलिनावस्थाको प्राप्त हुआ आत्मा ही दुर्गति है, इसमें संशय नहीं है ।

भावार्थः- निर्मल आत्मा स्वर्ग तथा मोक्षरूप उत्तम गतिको प्राप्त होता है और मलिन आत्मा नरक तथा पशुगतिको प्राप्त होता है । यहाँ आधाराधेय भावको

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गौण कर आत्माको ही सुगति तथा दुर्गति कहा गया है ।।८।।

तीर्थं तीर्थं भ्रमन्तीह यस्य दर्शनकाङ्क्षया ।
वसंस्तत्रैव देहेऽसौ देवो द्रष्टुं न शक्यते ।।९।।

अर्थ:- इस जगतमें जिसके दर्शनकी इच्छासे लोग प्रत्येक तीर्थमें भ्रमण करते हैं वह आत्मारूपी देव तो इसी शरीरमें निवास कर रहा है परन्तु कैसा आश्चर्य है कि देखा नहीं जा सकता ।

भावार्थ:- आत्मारूपी देव रस, रूप, गंध, स्पर्श तथा शब्द आदि पौद्गलिक गुण और पर्यायोंसे रहित है अत: दिखायी नहीं देता । उसके देखनेके लिए ज्ञानरूपी नेत्रका उपयोग करना चाहिए ।।९।।

स्थाने स्थाने भ्रमन्तीह देवदर्शनहेतवे ।
शरीरस्थं न पश्यन्ति देवमज्ञानबुद्धय: ।।१०।।

अर्थ:- अज्ञानी पुरुष देवदर्शनके निमित्त इस जगतमें स्थान-स्थानपर भ्रमण करते हैं परन्तु शरीरमें स्थित देवको नहीं देखते हैं ।।१०।।

संतोषामृतनिर्मग्न: शत्रुमित्रसम: सदा ।
सुखदु:खापरिज्ञायी रागद्वेषपराङ्मुख: ।।११।।

सर्वधातुविनिर्मुक्तो ज्ञानरूपो निरन्जन: ।
स्वात्मैव कर्म निर्मुक्तो ध्यातव्यो मोक्षकाङ्क्षिभि: ।।१२।।

अर्थ:- जो सन्तोषरूपी अमृतमें निमग्न है, शत्रु और मित्रपर सदा समभाव रखता है, इन्द्रियजन्य सुख और दु:खकी अनुभूतिसे रहित है, राग-द्वेषसे पराङ्मुख है, रक्त, माँस, मज्जा आदि धातुओंसे रहित है, ज्ञानरूप है, कर्मजन्य कालिमासे रहित है ऐसा आत्मा ही मोक्षाभिलाषी जीवोंके द्वारा ध्यान करने योग्य है ।

भावार्थ:- यहाँ पर्यायार्थिक नयको गौण कर द्रव्यार्थिक नयकी प्रमुखतासे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जो आत्माको सिद्ध परमेष्ठीके समान कर्म-निर्मुक्त कहा गया है उसका अभिप्राय आत्म-शक्तिको प्रकट करना मात्र है । इस प्राणीको ऐसा विचार करना चाहिए कि यद्यपि मेरा आत्मा वर्तमानमें कर्माच्छादित होकर अशुद्ध हो रहा है तथापि कर्माच्छादित होना मेरा स्वभाव नहीं है । आत्मपुरुषार्थको जागृत कर कर्मक्षयका प्रयत्न करूँ तो मैं भी सिद्ध परमेष्ठीके समान कर्मरहित हो सकता हूँ ।।११-१२।।

प्रभाराशिरिव श्रीमान् सर्वविश्वोपकारक: ।
सदानंदभरापूर्ण: स्वात्मा ध्येय: सुदृग्जनै: ।।१३।।

अर्थ:- जो प्रभाराशि-सूर्यके समान आत्मतेजसे देदीप्यमान है, अनन्त चतुष्टयरूप लक्ष्मीसे युक्त होनेके कारण श्रीमान् है, समस्त संसारका उपकार करनेवाला है और निरन्तर आनन्दके भारसे परिपूर्ण है ऐसा अपना आत्मा ही सम्यग्दृष्टि जीवोंके द्वारा ध्यान करने योग्य है ।

भावार्थ:- व्यवहारनयसे यद्यपि ध्यानका विषय प्रत्येक पदार्थ हो सकता है तथापि निश्चयनयसे पर पदार्थोंके ध्यानका निषेध है । आत्मध्यानकी उपलब्धि तब तक नहीं हो सकती जब तक कि यह जीव मोहजन्य अनेक इच्छाओंसे आकुल रहता है । अत:आत्मध्यानके लिए इच्छाओंका निरोध करना चाहिए ।।१३।।

शुद्धस्फटिकसंकाश: सर्वज्ञगुणभूषित: ।
परमात्मकलायुक्तो ध्येय: स्वात्मा मनीषिभि: ।।१४।।

अर्थ:- जो शुद्ध स्फटिकके समान है; सर्वज्ञके गुणोंसे विभूषित है और परमात्माकी कलासे युक्त है ऐसा अपना आत्मा ही विद्वज्जनोंके द्वारा ध्यान करनेके योग्य है ।।१४।।

षट्चक्रादिकं नूनं सर्वं त्यक्त्वा मुमुक्षुभि: ।
स्वात्मा ध्यातव्य एवायं ध्याने रूपविवर्जित: ।।१५।।

अर्थ:- मोक्षाभिलाषी जीवोंको अन्यमतके योगशास्त्रमें प्रसिद्ध षट्चक्र आदि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समस्त ध्येयोंको निश्चयपूर्वक छोड़कर ध्यानके समय इसी एक रूपातीत आत्माका ध्यान करना चाहिए ।।१५।।

एवमभ्यासयोगेन ध्यानेनानेन योगिभिः ।
शरीरान्तः स्थितः स्वात्मा यथावस्थो विलोक्यते ।।१६।।

अर्थः- इस प्रकारके अभ्याससे युक्त इस ध्यानके द्वारा योगीजन शरीरके भीतर स्थित यथावस्थित-स्वात्म स्वभावनिष्ठ अपने आत्माका अवलोकन करते हैं ।

भावार्थः- यहाँ आत्मावलोकनका अर्थ आत्मानुभूति है । क्योंकि आत्मा कोई मूर्तिमान् पदार्थ नहीं है जिसका अवलोकन किया जा सके ।।१६।।

अज्ञातः पुरुषो येन गुणप्रकृतिवर्जितः ।
तेनैव तीर्थयज्ञादि सेवनीयं न योगिभिः ।।१७।।

अर्थः- जिसने सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुणकी प्रकृतिसे रहित पुरुष अर्थात् आत्माको नहीं जाना है उसीके द्वारा तीर्थ तथा यज्ञादिका सेवन किया जाता है योगियोंके द्वारा नहीं ।

भावार्थः- शुद्धोपयोगकी भूमिकामें अवस्थित मुनियोंके लिए तीर्थ तथा यज्ञादि पूजा आदि व्यवहार धर्मकी अनिवार्यता नहीं है ।।१७।।

आत्मज्ञानं परं तीर्थं न जलं तीर्थमुच्यते ।
आत्मज्ञानं हि यत् शौचं तत् शौचं परमं स्मृतम् ।।१८।।

अर्थः- आत्मज्ञान ही उत्कृष्ट तीर्थ है, जल तीर्थ नहीं कहलाता है । जो आत्मज्ञानरूप शौच है वही उत्कृष्ट शौच माना गया है ।

भावार्थः- अन्यमतमें प्रसिद्ध पुष्कर तथा गङ्गोत्तरी आदिके जलमें किये हुए स्नानको शौच-पवित्रताका कारण माना गया है । परन्तु यहां आचार्य कह रहे हैं कि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आत्मज्ञान ही सबसे बड़ा तीर्थ है इसीमें स्नान करनेसे आत्मा पवित्र होता है ❀ ।।१८।।

आत्मज्ञानं परो धर्मः सर्वेषां धर्मकारिणाम् ।
प्रधानं सर्व विद्यानां प्राप्यते ह्यमृतं ततः ।।१९।।

अर्थ:- धर्म करनेवाले सभी पुरुषोंके लिए आत्मज्ञान ही उत्कृष्ट धर्म कहा गया है । यह आत्मज्ञान ही सब विद्याओंमें प्रधान माना गया है । क्योंकि उस आत्मज्ञानसे ही अमृत - मोक्ष प्राप्त होता है ।।१९।।

तपोभिर्दुस्तरैस्तप्तै र्व्रतैस्तैर्दुद्धरैः कृतैः ।
आत्मज्ञानं विना मोक्षो न भवेद् योगिनामपि ।।२०।।

अर्थ:- तपे हुए अत्यन्त कठिन तपों और कठिनाईसे धारण करने योग्य व्रतोंके द्वारा आत्मज्ञानके बिना योगियोंको भी मोक्ष प्राप्त नहीं होता ।

भावार्थ:- यदि आत्मज्ञान नहीं है तो घोर परीषहोंसे युक्त तपश्चरण तथा सिंहनिष्क्रीडित आदि कठिन व्रत भी मोक्षप्राप्तिमें सहायक नहीं होते हैं । कर्म, नोकर्म और भावकर्मसे रहित परम ज्ञायकभाव - शुद्ध ज्ञायक स्वभावसे युक्त आत्माका ज्ञान ही मोक्षमार्गका मूल कारण है ।।२०।।

सर्वधर्ममयः श्रीमान् सर्ववर्णविवर्जितः ।
आत्मा विज्ञायते येन तस्य जन्म न विद्यते ।।२१।।

अर्थ:- जो अस्ति-नास्ति, भेद-अभेद, एकत्व-अनेकत्व आदि परस्पर विरोधी समस्त धर्मोंसे सहित है, अनन्तज्ञानादि चतुष्टयरूप लक्ष्मीसे सहित है और शरीराश्रित शुक्ल पीतादि समस्त वर्णों अथवा ब्राह्मणादि समस्त वर्णोंसे रहित है, ऐसा आत्मा जिसके द्वारा जाना जाता है उसका पुनःजन्म नहीं होता अर्थात् वह निर्वाणको प्राप्त होता है ।।२१।।

❀ आत्मा नदी संयमपुण्यतीर्था सत्योदका शीलतटा दयोर्मिः ।
तत्राभिषेकं कुरु पाण्डुपुत्र न वारिणा शुद्ध्यति चान्तरात्मा ।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एवं ज्ञात्वा स्वमात्मानं मनोवाक्कायवर्जितः ।
ध्येयः परपदारूढः परमात्मा निरञ्जनः ।।२२।।

अर्थः- इस प्रकार अपने आत्माको जानकर, मन वचन कायसे रहित, उत्कृष्ट पदपर आरूढ तथा कर्मकालिमासे रहित परमात्माका ध्यान करना चाहिए ।।२२।।

सुप्तदृष्टिसमां तत्र दृष्टिमुन्मील्य योगिवत् ।
पश्येत्परपदारूढं देवेशं मुक्तिहेतवे ।।२३।।

अर्थः- जिसप्रकार कोई सोता हुआ मनुष्य किसी पदार्थपर अपनी दृष्टि खोलता है उसी प्रकार योगियोंके समान दृष्टि खोलकर मुक्तिके निमित्त, परमपदपर आरूढ देवाधिदेव सिद्ध परमेष्ठीका अवलोकन करना चाहिए । अर्थात् उनका ध्यान करना चाहिए ।।२३।।

शंकरो वा जिनेन्द्रो वा यो यस्याभिमतः सदा ।
एष एव प्रभुः शान्तो निर्वाणस्थो विलोक्यते ।।२४।। ❀

अर्थः- शंकर हो, चाहे जिनेन्द्र हो अथवा जो जिसे इष्ट हो वही शान्त प्रभु निर्वाणमें स्थित दिखायी देता है ।

भावार्थः- कर्म - कालिमासे रहित सिद्ध परमेष्ठी सिद्धालयमें विराजमान हैं उन्हें अपनी इच्छानुसार हरि हर ब्रह्मा बुद्ध अथवा जिनेन्द्र आदि किसी नामसे सम्बोधित किया जाता है ।।२४।।

❀ त्वामव्ययं विभुमचिन्त्यमसंख्यमाद्यं
ब्रह्माणमीश्वरमनन्तमनङ्गकेतुम् ।
योगीश्वरं विदितयोगमनेकमेकं
ज्ञानस्वरूपममलं प्रवदन्ति सन्तः ।।२४।।
बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चित बुद्धिबोधात्
त्वं शङ्करोऽसि भुवनत्रयशंकरत्वात्
धातासि धीर शिवमार्गविधेर्विधानाद्
व्यक्तं त्वमेव भगवन् पुरुषोत्तमोऽसि ।।२५।। -भक्तामरस्तोत्र

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुरासुरनराधीश-पूजितो जगतां हितः ।
सर्वधातुविनिर्मुक्तो देवेशः परिकीर्तितः ।।२५।।

अर्थः- जो सुरेन्द्र असुरेन्द्र और नरेन्द्रोंके द्वारा पूजित है, समस्त जगतका हितकारी है, तथा सब धातुओंसे रहित है वही देवाधिदेव कहा जाता है ।।२५।।

पुण्यापुण्यद्वयातीतो भववल्लीविनाशकः ।
अव्यक्तो व्यक्तरूपश्च देवेशोऽयमिहोच्यते ।।२६।।

अर्थः- जो पुण्य और पाप दोनोंसे रहित है, संसाररूपी बेलाका नाश करनेवाला है, अतीन्द्रिय होनेके कारण अव्यक्त है, और ज्ञान-दर्शन-स्वभावसे युक्त होनेके कारण व्यक्तरूप है वह इस जगत्में देवाधिदेव कहा जाता है ।।२६।।

सदानन्दमयो देवः सिद्धो बुद्धो निरामयः ।
निराकारो निराभासो निःप्रपञ्चो निरञ्जनः ।।२७।।

अर्थः- जो सदा आनन्दसे तन्मय है अथवा सत्-वास्तविक-आत्मोत्थ आनन्दसे परिपूर्ण है, अनन्त चतुष्टयरूप लक्ष्मीके साथ क्रीड़ा करनेके कारण देव है, युक्ति और आगमसे निर्णीत होनेके कारण सिद्ध है, सहज ज्ञान-दर्शनसे युक्त होनेके कारण बुद्ध है, जन्म-मरणके रोगसे रहित होनेके कारण निरामय-नीरोग है, रूप, रस, गंध तथा स्पर्शसे रहित होनेके कारण निराकार - मूर्तिरहित है, कृत्रिमतासे रहित होनेके कारण निराभास - वास्तविक है, प्रपञ्च - इष्टानिष्टके विकल्पसे रहित होनेके कारण निरञ्जन है ।।२७।।

कृत्स्नकर्मकलातीतः सकलः निष्कलोऽपि च ।
परमात्मा परंज्योतिः परं ब्रह्म परात्परः ।।२८।।

अर्थः- समस्त कर्मरूपी शरीरसे रहित है, निष्कल - शरीर रहित होने पर भी सकल - शरीरसहित (पक्षमें) केवलज्ञानादि नवकेवललब्धिरूप कलाओंसे सहित है, परमात्मा है, परं ज्योतिस्वरूप है, परं ब्रह्मा है, उत्कृष्टसे भी उत्कृष्ट - सर्वोत्कृष्ट है ।।२८।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गुणत्रयविनिर्मुक्तो गन्धस्पर्शविवर्जितः ।
अच्छेद्यश्चाप्यभेद्यश्च निर्लेपो निर्मलः प्रभुः ।।२९।।

अर्थः- सत्त्व, रजस् और तमोगुणसे रहित है, गंध और स्पर्शसे विवर्जित है, अछेद्य है, अभेद्य है, निर्लेप है, लोकोत्तर सामर्थ्यवान् है ।।२९।।

सगुणो निर्गुणश्चापि संसारार्णवतारकः ।
दुर्लक्ष्यो लक्ष्यमापन्नः सुवर्णो वर्णवर्जितः ।।३०।।

अर्थः- निर्गुण - सत्त्वादि गुणोंसे रहित होनेपर भी सम्यक्त्वादि आठ गुणोंसे सहित है, संसार - सागरसे तारनेवाला है, दुर्लक्ष्य - बड़ी कठिनाईसे अनुभवमें आनेवाला है, शुद्धात्मस्वरूपकी प्राप्तिरूप लक्ष्यको प्राप्त है, सुवर्ण – सुयशसे सहित है, वर्ण – कृष्ण पीतादि वर्णोंसे रहित है ।।३०।।

एकोऽप्यनेकरूपः स्यात् स्थूलः सूक्ष्मो लघुर्गुरुः ।
निर्वाणपदमारूढो देवेशोऽयमिहोच्यते ।।३१।।

अर्थः- सामान्य अथवा द्रव्यदृष्टिसे एक होकर भी विशेष अथवा पर्यायदृष्टिसे अनेकरूप है, असंख्यात आत्मप्रदेशोंका अखण्ड पिण्ड होनेसे स्थूल है, पारस्परिक व्याघात - बाधा आदिसे रहित होनेके कारण सूक्ष्म है, एक समयमात्रमें सात राजू प्रमाण गमन करनेमें समर्थ होनेसे लघु है, आत्माकी श्रेष्ठतम पर्याययुक्त होनेके कारण गुरु है तथा निर्वाणपदको प्राप्त है, वही इस जगत्में देवाधिदेव कहलाता है ।।३१।।

ब्राह्मणैर्लक्ष्यते ब्रह्मा विष्णुः पीताम्बरैस्तथा ।
रुद्रः शैवैस्तथा दृष्ट एष एव निरञ्जनः ।।३२।।

जिनेन्द्रो लक्ष्यते जैनैर्बुद्धं कृत्वा च सौगतैः ।
कौलिकैः कौलमाख्यातं स एवायं पुरातनः ।।३३।।

अर्थः- कर्मकालिमासे रहित यह निरञ्जन देव ही ब्राह्मणोंके द्वारा ब्रह्मा कहा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जाता है, वैष्णवोंके द्वारा विष्णु कहा जाता है, शैवोंके द्वारा रुद्र कहा जाता है, जैनोंके द्वारा जिनेन्द्र कहा जाता है, बौद्धोंके द्वारा बौद्ध कहा जाता है और कौलिकोंके द्वारा कौल कहा जाता है । ऐसा यह पुरातन देव है ।।३२-३३।। ॐ

स्फटिको बहुरूपश्च यथैवोपाधिभेदतः ।
स तथा दर्शनैः षड्भिर्ध्यात एकोऽप्यनेकधा ।।३४।।

अर्थः- जिस प्रकार उपाधिके भेदसे स्फटिक अनेकरूप हो जाता है, उसीप्रकार षड् दर्शनोंके द्वारा ध्यान किया हुआ यह देव अनेक रूप हो जाता है ।।३४।।

यथाचानेकरूपं स्याज्जलं भूवर्णभेदतः ।
तथा भावविभेदेन नानारूपः स गीयते ।।३५।।

अर्थः- जिस प्रकार एक ही जल पृथ्वीके वर्ण भेदसे अनेक रूप हो जाता है उसी प्रकार भावोंके विभेदसे यह एक आत्मा अनेक रूप कहा जाता है ।।३५।।

भावभेदान्न गच्छन्ति दर्शनान्येकवर्त्मना ।
एकत्रापि स्थिताः काये पञ्चैते विषया यथा ।।३६।।

अर्थः- जिसप्रकार एक ही शरीरमें स्थित स्पर्श आदि पाँच विषय, ज्ञानरूप एक मार्गसे मुक्त होनेके कारण भावभेदको प्राप्त नहीं होते हैं उसीप्रकार सब दर्शन एक ही मार्गका आश्रय लेनेसे भावभेदको प्राप्त नहीं होते हैं ।

भावार्थः- यद्यपि स्पर्श आदि विषय विभिन्न इन्द्रयोंके विषय होनेसे विभिन्नताको प्राप्तं दिखते हैं तथापि वे सब एक मतिज्ञानकी पर्यायविशेष होनेंसे एकरूप ही कहे जाते हैं । इसी प्रकार सब दर्शन, प्रकृति तथा माया आदिसे रहित शुद्ध आत्मतत्त्वको ही परमात्मा मानते हैं अतः सबका लक्ष्य एक होने से एकरूप प्रतीत होते हैं । यहां

ॐ यं शैवाःसमुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनो ।
बौद्धा बुद्ध इति प्रमाणपटवः कर्तेति नैयायिकाः ।
अर्हन्नित्यथ जैनशासनरताः कर्मेति मीमांसकाः।
सोऽयं वो विदधातु वाञ्छितफलं त्रैलोक्यनाथो हरिः ।। हन्नुमत् नाटक ।।

५६८०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सब दर्शनोंकी मान्यतामें जो मौलिक भेद है उसे गौण कर समन्वयात्मक दृष्टिसे इतना ही कहा गया है कि आत्माकी शुद्ध दशा ही परमात्मा है, उसमें नामोंकी विविधतासे नानारूपता दिखती है, परमार्थसे नानारूपता नहीं है ।।३६।।

व्योमरूपो जगन्नाथः क्रियाकालगुणोत्तरः ।
संसारदृष्टिनिर्मुक्तो सर्वतो याति लक्षणम् ।।३७।।

अर्थः- वह त्रिलोकीनाथ सिद्ध परमात्मा व्योमरूप है अर्थात् मूर्तिका अभाव होनेसे आकाशरूप है । क्रिया - लोकान्त शिखरसे अन्यत्र जानेरूप क्रिया तथा काल गुण - कालद्रव्यके निमित्तसे होनेवाले विभाव व्यञ्जन पर्यायरूप परिवर्तनोंसे रहित है । संसारकी सृष्टिसे रहित है, अर्थात् पंच परावर्तनरूप संसारसे अतीत है और ज्ञानस्वभावकी अपेक्षा सब ओर लक्ष्यमें आता है ।

भावार्थः- आत्मा ज्ञानप्रमाण है, ज्ञान ज्ञेयप्रमाण है और ज्ञेय लोकालोक है इस विवक्षासे सिद्ध भगवान्‌को सर्वव्यापक कहा गया है, प्रदेशोंकी अपेक्षा नहीं । प्रदेशोंकी अपेक्षा तो सिद्ध परमेष्ठी किंचित् ऊन चरम शरीरकी अवगाहनाप्रमाण क्षेत्रमें ही स्थित है ।।३७।।

निर्मलो निष्कलः शान्तः सर्वज्ञः सुखदः प्रभुः ।
स एव भगवन् देव कोऽपि नेयो निरञ्जनः ।।३८।।

अर्थः- निर्मल, अशरीर, शान्त, सर्वज्ञ, सुखदायक,प्रभु तथा कर्म-कालिमासे रहित वह अनिर्वचनीय सिद्ध भगवान् ही प्राप्त करनेके योग्य हैं ।।३८।।

केवल-ज्ञान-संपूर्णः केवलानंद-संसृतः (संश्रितः)
केवलज्ञानगम्यश्च देवेशोऽयमिहोच्यते ।।३९।।

अर्थः- जो केवलज्ञानसे परिपूर्ण है, केवलानन्द - विषयातीत - शुद्धात्मासे समुत्पन्न सुखसे युक्त है तथा केवलज्ञानके द्वारा ही जिनका साक्षात्कार होता है वही देवोंका देव कहा जाता है ।।३९।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अत्यनंतगुणैः पूर्णमनंतसुखशालिनम् ।
ध्यायेन्मुक्तिपदारूढं देवेशमपुनर्भवम् ।।४०।।

अर्थः- अनन्तानन्त गुणोंसे परिपूर्ण, अनन्त सुखसे सुशोभित, मुक्तिपदपर आरूढ़ और पुनर्जन्मसे रहित उन देवाधिदेवका ध्यान करना चाहिए ।।४०।।

समरसस्वच्छगङ्गाया जलेन स्नपयेत् प्रभुम् ।
पूजयेत्तं ततो योगी भावपुष्पैः सुगंधिभिः ।।४१।।

अर्थः- योगीको समरसरूप स्वच्छ गंगाजलके द्वारा उन प्रभुका अभिषेक करना चाहिए । पश्चात् निर्मल भावरूपी सुगंधित फूलोंके द्वारा उनकी पूजा करनी चाहिए ।।४१।।

भक्तिस्थले विसाले च वर्तिं कृत्वा स्थिरं मनः ।
निक्षिप्य परमानंदस्नेहं पूर्णसुधाधिकाम् ।।४२।।
दीपश्रेणिं सुदीप्तां च प्रबोध्य ज्ञानचेतसा ।
उत्तारयेत्प्रभोः पुण्यमारार्तिकमिति क्रमात् ।।४३।।

अर्थः- भक्तिरूपी विशाल पात्रमें निश्चल मनकी बत्ती बनाकर परमानन्दरूपी तेल भरना चाहिए । पश्चात् ज्ञानसम्पन्न चित्तके द्वारा पूर्ण सुधासे युक्त देदीप्यमान दीपमालाको प्रज्ज्वलित कर उसके द्वारा क्रमसे प्रभुकी पवित्र आरती उतारना चाहिए ।।४२-४३।।

सदैव विधिना तेन देवेशस्य प्रभोरिदम् ।
भवेयं भावितं चिंता कारकं चेति चिन्तयेत् ।।४४।।

अर्थः- इस विधिसे देवाधिदेव प्रभुकी अर्चाकर ऐसी भावना करना चाहिए कि हे प्रभो! मैं आपके ही समान शुद्ध भावोंके द्वारा मुक्त होऊं ।।४४।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वहंसमंतरात्मानं चिद्रूपं परमात्मनि ।
योजयेत् परमे हंसे निर्वाणपदमाश्रिते ।।४५।।

अर्थः- शरीरके भीतर रहनेवाले चैतन्यरूप अपने हंस - आत्मा को, निर्वाणपदको प्राप्त परमहंस - सिद्ध परमेष्ठीमें लगाना चाहिए ।

भावार्थः- जो प्राणी बहिरात्म अवस्थाको छोड़कर अन्तरात्मा बनता है और परमात्माका निरन्तर ध्यान करता है वह स्वयं परमात्मा हो जाता है ।।४५।।

द्वाभ्यामैक्यं विधायाथ शुभध्यानेन योगवित् ।
परमात्मस्वरूपं तं स्वमात्मानं विचिंतयेत् ।।४६।।

अर्थः- तदनन्तर योग - ध्यानको जाननेवाला योगी, स्वहंसरूप ध्याता और परमहंसरूप ध्येयको एक कर अर्थात् ध्याता और ध्येयमें अभेद स्थापित कर शुभ ध्यानके द्वारा अपने आत्माको परमात्मस्वरूप चिन्तवन करे ।।४६।।

सुलब्धानंदसाम्राज्यं केवलज्ञानभास्करम् ।
परमात्मस्वरूपं तं जातं त्यक्तभवार्णवम् ।।४७।।

अर्थः- वह अपने आपके विषयमें ऐसा विचार करे कि में उस परमात्मस्वरूप हूँ, जिसने आनंदका साम्राज्य प्राप्त कर लिया है, जो केवलज्ञानरूपी सूर्यसे प्रकाशमान है तथा जिसने संसाररूपी सागरका परित्याग कर दिया है ।।४७।।

अहं निरञ्जनो देवः सर्वलोकाग्रमाश्रितः ।
इति ध्यानं सदा ध्यायेदक्षयस्थानकारणम् ।।४८।।

अर्थः- मैं ही समस्त लोकके अग्रभागपर स्थित निरंजन - कर्मकालिमा रहित देव हूं, ऐसा ध्यान सदा करना चाहिये क्योंकि यह ध्यान अक्षय स्थान - अवि नाशी - मोक्षपद की प्राप्ति का कारण है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थः- यहां द्रव्यदृष्टिसे कथन है । पर्यायदृष्टिसे सिद्ध परमेष्ठी तथा ध्यान करनेवाले योगीमें बहुत भेद है । पर्यायाश्रित भेदको गौण कर द्रव्याश्रित अभेदको प्रमुखता देनेका अभिप्राय इतना ही है कि यह जीव इतना निश्चय कर सके कि मुझमें भी सिद्ध बननेकी योग्यता है अतः बाधक कारणोंको दूर कर सिद्ध अवस्था प्राप्त करना चाहिए ।।४८।।

आत्मनो ध्यानलीनस्य दृष्टे देवे निरञ्जने ।
आनंदाश्रुप्रपातश्च रोमाञ्चश्चेति लक्षणम् ।।४९।।

अर्थः- जिस ध्यान-निमग्न आत्माको निरंजनदेव - सिद्ध परमेष्ठीका दर्शन हो जाता है अर्थात् उनकी अनुभूति होने लगती है, उसके आनन्दाश्रुओंका प्रपात होने लगता है और रोमांच उल्लसित हो आते हैं । उसका यही बाह्य लक्षण है ।।४९।।

तद् ब्रह्म तद् व्रतं ध्यानं तत्रत्यो योग एव सः ।
स एव हि परानंदो न यत्र क्लिश्यते मनः ।।५०।।

अर्थः- जिसमें मन क्लेशको प्राप्त नहीं होता है अर्थात् जिसमें मन संकल्प-विकल्प छोड़कर शुद्ध आत्मस्वरूपमें स्थिर होता है वही ब्रह्म है, वही व्रत है, वही ध्यान है, वही उस भूमिकामें होनेवाला योग है और वही परमानन्द है ।।५०।।

संकल्पेन विकल्पेन हीने हेतुविवर्जिते ।
धारणाध्येनिर्मुक्ते निर्मले स्थानके ध्रुवम् ।।५१।।
नियुञ्जीत सदा चित्तमभावे भावनां कुरु ।
पदे तत्र गतो योगी न पुनर्जन्मतां व्रजेत् ।।५२।।

अर्थः- जो संकल्प-विकल्पसे रहित है, कारण रहित है, धारणा और ध्येयके विकल्पसे निर्मुक्त है तथा निर्मल है ऐसे स्थानमें - ऐसे विषयमें निश्चित ही सदा मन लगाओ तथा ऐसी भावना करो कि ज्ञायकस्वाभावके सिवाय मुझमें अन्य सब विभावोंका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अभाव है । जो योगी उस पदको प्राप्त होता है - उस निर्विकल्प शुक्लध्यानको प्राप्त होता है वह फिर जन्मको प्राप्त नहीं होता अर्थात् वह जन्म-मरणके क्रमसे मुक्त हो जाता है ।।५१-५२।।

ज्ञेयं सर्व पदातीतं ज्ञानं च मन उच्यते ।
ज्ञानं ज्ञेयं समं कुर्यान्नान्यो मोक्षपथः पुनः ।।५३।।

अर्थः- ज्ञेय सब पदोंसे अतीत है और ज्ञान मन कहा जाता है इसलिए ज्ञान और ज्ञेयको सम करना चाहिए । इससे अतिरिक्त अन्य मोक्षमार्ग नहीं है ।।५३।।

ध्रुवोपरि मनो नीत्वा यत्परं वा विलोक्यते ।
यत्परापरतो नास्ति तत्सूक्ष्मं तन्निरञ्जनम् ।।५४।।

अर्थः- ध्रुव-अर्थात् शुद्ध त्रैकालिक ज्ञायक स्वभावपर मन ले जाकर जिस सर्वोत्कृष्टका दर्शन होता है तथा जिससे बढ़कर अन्य वस्तु नहीं है, वही सूक्ष्म तथा निरंजन सिद्धपद है ।।५४।।

पूर्वमार्गे न मोक्षोऽस्ति पश्चिमेऽपि न विद्यते ।
उन्मार्गे उन्मनीभावे मुक्ति स्यान्मार्गवर्जिते ।।५५।।

अर्थः- न तो पूर्वमार्ग अनादि संसेवित गृहस्थ पदमें मोक्ष है और न पश्चात् ग्रहीत मुनिपदमें मोक्ष है किन्तु मार्गसे रहित उपेक्षा भावरूप उत्कृष्ट मार्गमें मोक्ष होता है ।

भावार्थः- गृहस्थका पद अनेक आकुलताओंसे परिपूर्ण है अतः वह तो मोक्षमार्ग हो ही नहीं सकता किन्तु जो मुनिपद भी विविध प्रकारके विकल्पोंसे सहित है - शुभोपयोगकी भूमिकामें होनेवाले पुण्य भावोंसे परिपूर्ण है वह भी मोक्षका साक्षात् मार्ग नहीं है । साक्षात् मार्ग तो उन्मनीभाव - पूर्ण वीतरागभाव ही है । वही मोक्षका उत्कृष्ट मार्ग कहा गया है । जिस समय यह पूर्ण वीतरागभाव प्रकट होता है उस समय पूर्व कल्पित सब मार्ग स्वयं समाप्त हो जाते है ।।५५।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भव भ्रान्तिपरित्यागात् सदानन्दरसात्मक: ।
सहजावस्थित: साधुरयं मोक्षपथ: स्मृत: ।।५६।।

अर्थ:- भवभ्रमणका परित्याग होनेसे जो समीचीन आत्मोत्थ आनन्दसे तन्मय है तथा सहज परमपरिणामिक भावमें अवस्थित है ऐसा साधु ही मोक्षमार्ग माना गया है ।

भावार्थ:- यहाँ मार्ग और मार्गवान्में अभेद कर मार्गवान्को ही मार्ग कहा गया है ।।५६।।

मनोवाक्कायरहितं श्वासोच्छ्वासविवर्जितम् ।
गमागमपथातीतं सर्वव्यापारवर्जितम् ।।५७।।

अर्थ:- जो मन - वचन - कायके व्यापारसे रहित है, श्वासोच्छ्वाससे वर्जित है, गमनागमनके मार्गसे दूर है, सर्व व्यापारसे रहित है ।

निराश्रयं निराधारं सर्वाधारं महोदयम् ।
पराचीनं पदं ज्ञेयं योगिभिस्तन्निरञ्जनम् ।।५८।।

अर्थ:- जो किसीके आश्रित नहीं है, किसी अन्यके आधार पर नहीं है, कल्याणदायक होनेसे सबका आधार है और महान् अभ्युदयसे सहित है, वही निरञ्जन परमपद है, ऐसा योगियोंको जानना चाहिए ।।५८।।

पवनो म्रियते यत्र मनो यत्र विलीयते ।
विज्ञेयं सहजं स्थानं तत्सूक्ष्ममजरामरम् ।।५९।।

अर्थ:- जहाँ श्वसोच्छ्वासरूप पवन समाप्त हो जाता है और मन विलीन हो जाता है उसे सूक्ष्म तथा अजर अमर सहज स्थान जानना चाहिए ।।५९।।

मनोव्यापारनिर्मुक्तं सदैवाभ्यासयोगत: ।
उन्मनीभावमायातं लभ्यते तत्पदं क्रमात् ।।६०।।

अर्थ:- निरन्तर अभ्यास करते रहनेसे जो मनके व्यापारसे निर्मुक्त हो जाता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है तथा जो उन्मनीभावको प्राप्त हुआ है ऐसा राग-द्वेषके अप्रणिधानरूप उपेक्षाभावसे सहित पद क्रमसे प्राप्त होता है ।।६०।।

विमुक्तविषयासंगं सन्निरुद्धं मनो हृदि ।
यदा यात्युन्मनीभावं तदा तत्परमं पदम् ।।६१।।

अर्थ:- जब मन विषयासक्तिको छोड़कर अपने हृदयमें अच्छी तरह रुक जाता है तब वह उन्मनीभावको प्राप्त होता है । वह उन्मनीभाव ही परम पद है ।।६१।।

ध्यातृध्यानोभयाभावो ध्येयेनैक्यं यदा व्रजेत् ।
सोऽयं समरसीभावस्तदेकीकरणं स्मृतम् ।।६२।।

अर्थ:- जब ध्याता, ध्यान - दोनोंका अभाव ध्येयके साथ एकत्वको प्राप्त होता है तब समरसीभाव प्रकट होता है, वही ध्याता और ध्येयका एकीकरण कहलाता है ।।६२।।

शुद्धध्यानस्य सूक्ष्मस्य निराकारस्य किञ्चन ।
तथा तत्प्रोच्यते सद्भिर्दुर्ज्ञेयं महतामपि ।।६३।।

अर्थ:- सूक्ष्म तथा निर्विकल्प शुद्धध्यानके विषयमें सत्पुरुषोंके द्वारा कुछ कहा जाता है जो कि बड़े-बड़े पुरुषोंको भी दुर्ज्ञेय है - कठिनाईसे जानने योग्य है ।।६३।।

रात्रौ स्वप्नेन मूकेन लब्ध: स्वप्नोऽत्र केनचित् ।
न ब्रू ते सोऽपि मूकस्तु तेन स्वप्नो न लभ्यते ।।६४।।

अर्थ:- इस जगत्में रात्रिके समय सोये हुए किसी गूँगे मनुष्यने स्वप्न प्राप्त किया - स्वप्न देखा । वह गूँगा मनुष्य न तो उस स्वप्नको कहता है और न उसके द्वारा देखा हुआ स्वप्न प्राप्त किया जाता है ।।६४।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यो मूको यादृशी रात्रौ स्वप्नो लभ्येत तादृशम् ।
फलं च यादृशं तस्य शृणु सौम्य तदादरात् ।।६५।।

अर्थः- जो गूँगा जैसी रात्रिमें जैसा स्वप्न देखता है उसीके अनुरूप वह वैसा ही फल प्राप्त करता है । हे सोम्य ! हे भद्र ! वह जैसा फल प्राप्त करता है उसे आदरपूर्वक सुनो ।।६५।।

अविद्यारात्रिस्वप्नेन चित्तमूकेन योगिना ।
स्वप्नो भावमयो लब्धस्तस्यैवानन्ददायकः ।।६६।।

अर्थः- जो अविद्यारूपी रात्रिमें सोया हुआ है तथा चित्तकी अपेक्षा गूँगा है अर्थात् इधर-उधरकी बातका विचार नहीं करता है ऐसे योगीको जो भावमय स्वप्न प्राप्त होता है वह उसीके लिए आनन्ददायक होता है ।।६६।।

कृतो येन स्थिरो भावः परे ब्रह्मणि योगिना ।
परं ब्रह्मगतो भावस्तस्य मुक्तिफलो भरेत् ।।६७।।

अर्थः- जिस योगीने परब्रह्ममें अपना भाव स्थिर किया है उसका वह भाव परब्रह्मको प्राप्त होता है तथा मुक्तिरूपी फलसे सहित होता है ।।६७।।

सोमसूर्यद्वयातीतं वायुसंचारवर्जितम् ।
संकल्परहितं चित्तं परं ब्रह्म निगद्यते ।।६८।।

अर्थः- सोम और सूर्यसे अतीत, वायुके संचारसे वर्जित तथा संकल्पसे रहित चित्त परंब्रह्म कहलाता है ।।६८।।

न किञ्चिच्चिन्तयेच्चित्ते उन्मनीभावसंगतः ।
निराकारं महासूक्ष्मं महाध्यानं तदुच्यते ।।६९।।

अर्थः- उन्मनीभावको प्राप्त हुआ योगी जब अपने चित्तमें कुछ भी चिन्तन नहीं करता है तब उसका वह ध्यान निराकार और महा सूक्ष्म महाध्यान कहा जाता है ।।६९।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पिण्डपदरूपभेदा: शुभध्यानस्य ये पुरा ।
उक्तास्तस्यैव रोहार्थं प्रासादे पदिका यथा ।।७०।।

अर्थः- पहले जो शुभ ध्यानके पिण्डस्थ, पदस्थ और रूपस्थ भेद कहे हैं वे उसी सूक्ष्म महाध्यानपर आरूढ़ होनेके लिए कहे गये हैं । जिसप्रकार किसी बड़े महलपर चढ़नेके लिए सीढ़ियोंकी उपयोगिता है उसी प्रकारउस उत्कृष्ट ध्यानपर चढ़नेके लिये उन पिण्डस्थ आदि ध्यानोंकी उपयोगिता है ।।७०।।

कीदृशोऽस्मि क गन्तास्मि कात्रायातोऽस्मि साम्प्रतम् ।
इति योगी न जानाति लये लीनो निरञ्जने ।।७१।।

अर्थः- निरञ्जनलय ध्यानमें लीन हुआ योगी यह नहीं जानता है कि मैं कैसा हूँ ? कहाँ जाऊँगा और इस समय कहाँ आया हूँ ।।७१।।

आच्छादिते ज्ञाननेत्रे विषयैः पटलोपमैः ।
ध्यानं सिद्धपुरीद्वारं नैर पश्यन्ति जन्तवः ।।७२।।
पञ्चभिश्चञ्चलैर्दुष्टैः पृथग् विषयगामिमिः ।
अनिरुद्धैरिन्द्रियाश्वैर्ध्यानाद्व्यावर्तयेन्मनः ।।७३।।

अर्थः- जब इस जीवका ज्ञानरूपी नेत्र पटल - सघन आवरणके समान विषयोंके द्वारा आच्छादित रहता है तब वे मुक्तिनगरीके द्वारके समान इस उत्कृष्ट ध्यानको नहीं देखते हैं ।।७२।।

स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण और शब्दरूप पृथक् - पृथक् विषयोंमें गमन करनेवाले इन्द्रियरूपी पाँच चञ्चल दुष्ट घोड़ोंको यदि रोका नहीं जाता है तो इस जीवका मन ध्यानसे हट जाता है ।।७३।।

शमं नीतेषु तेष्वत्र कषायेष्विन्द्रियेष्वपि ।
ध्यानस्थैर्यत् कृतंचित्रं तस्य वश्यं जगत्त्रयम् ।।७४।।

अर्थः- इस जगत्में उन इन्द्रियों तथा कषायोंके शान्त हो जानेपर जिसे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ध्यानकी स्थिरता प्राप्त हुई है, आश्चर्य है कि तीनों जगत् उसके वशीभूत हो जाते हैं ।।७४।।

यत् शुभं कर्म कर्तृत्वं तत्कुर्यान्मनसा सह ।
मनस्तुल्यं फलं यस्मात् शून्येशून्यं भवेत् पुन: ।।७५।।

अर्थ:- जो शुभ कर्म तुझे करना है उसे मनके साथ करना चाहिए, क्योंकि फल मनके समान ही होता है अर्थात् जैसा मन होता है वैसा फल प्राप्त होता है । पश्चात् मनके शून्य अर्थात् कर्तृत्वकी भावनासे रहित, होनेपर कर्मका फल शून्य हो जाता है ।।७५।।

कृताभ्यासो यथाध्यानी लक्ष्यवेधे च तन्मना: ।
एक चित्ततया योगी वाञ्छितं कर्म साधयेत् ।।७६।।

अर्थ:- जिसप्रकार लक्ष्यवेधका इच्छुक मनुष्य अभ्यास करता हुआ लक्ष्यवेधको सिद्ध कर लेता है उसीप्रकार ध्यान करनेवाला योगी अभ्यास करता हुआ एक चित्त होनेसे वांछित कार्यको सिद्ध कर लेता है ।।७६।।

तस्मादप्युत्तमं सारं पवित्रं कर्मनाशनम् ।
सर्व धर्मोत्तरं चित्रं कार्य समरसात्मकम् ।।७७।।

अर्थ:- उस ध्यानसे भी उत्कृष्ट सारभूत समरसीभावका होना है क्योंकि यह समरसी भाव ही कर्मोंको नष्ट करनेवाला है, पवित्र है, सब धर्मोंसे श्रेष्ठ है तथा आश्चर्यकारक है ।।७७।।

जन्मलक्षैर्व्रतैरुग्रैर्यन्नैव क्षीयते कचित् ।
गत: समरसे माग्न्यं तत्कर्म क्षपयेत् क्षणात् ।।७८।।

अर्थ:- जो कर्म लाखों जन्म तथा कठिन व्रतोंके द्वारा भी कहीं नष्ट नहीं होता है, समरसीभावमें निमग्नताको प्राप्त हुआ योगी उस कर्मको क्षणभरमें नष्ट कर देता है ।।७८।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सर्वारम्भपरित्यागाच्चित्ते समरसं गते ।
या सिद्धिः स्यान्न सा जाता सर्वतीर्थावगाहने ।।७९।।

अर्थ:- समस्त आरम्भोंका परित्याग करनेसे चित्तके समरसी भावको प्राप्त होनेपर जो सिद्धि प्राप्त होती है वह समस्त तीर्थोंके अवगाहन करनेसे नहीं होती है ।।७९।।

विद्यमाने परे मूढा योगे समरसात्मके ।
योगं शोकं प्रकुर्वाणाः संभ्राम्यन्ति दिशो दिशः ।।८०।।

अर्थ:- समरसात्मक श्रेष्ठ योगके विद्यमान रहते हुए भी अज्ञानीजन खेदकारी अन्य योगोंको करते हुए प्रत्येक दिशामें भटकते रहते हैं ।।८०।।

तावद् ब्रह्मविशेषोऽस्ति यावद् ब्रह्म न विन्दति ।
संप्राप्ताः परमं ब्रह्म सर्वे वर्णा विजातयः ।।८१।।

अर्थ:- तब तक ही ब्रह्म विशेष है जब तक कि यह जीव शुद्धातत्त्वरूप ब्रह्मको प्राप्त नहीं होता है । परमब्रह्मको प्राप्त हुए सभी वर्ण विजाति हो जाते हैं ।

भावार्थ:- शुद्धात्म तत्त्वकी उपलब्धि होनेपर वर्णोंका व्यवहार समाप्त हो जाता है ।।८१।।

धर्ममार्गोद्धताः सन्ति दर्शनानां विभेदतः ।
मोक्षार्थं समतां यान्ति समुद्रं सरितो यथा ।।८२।।

अर्थ:- दर्शनोंकी विभिन्नतासे जो लोग धर्मके मार्गमें उद्धत, हठग्राही, एकान्तवादी हो रहे हैं वे भी मोक्षप्राप्तिके लिए उस तरह समताको प्राप्त होते हैं जिस तरह कि नदियाँ समुद्रको प्राप्त होती हैं ।।८२।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गवामनेकवर्णानामेकवर्णं यथा पयः ।
षण्णां वै दर्शनानाञ्च मोक्षमार्गस्तथा पुनः ।।८३।।

अर्थः- जिस प्रकार अनेक वर्णोंवाली गायोंका दूध एक ही वर्णका - सफेद होता है उसी प्रकार छहों दर्शनोंका मोक्षमार्ग एक ही प्रकारका होता है ।

भावार्थः- यहाँ षड् दर्शनोंमें एकरूपता सिद्ध करनेका अभिप्राय ग्रहण न कर पर पदार्थके संकल्पसे रहित शुद्ध आत्मतत्त्वकी उपलब्धि ही मोक्ष है, यह भाव ग्रहण करना चाहिए क्योंकि सभी दर्शनोंने इसे स्वीकार किया है ।।८३।।

संकल्पकल्पनामुक्तं रागद्वेषविवर्जितम् ।
सदानंदलये लीनं मनः सामायिकं स्मृतम् ।।८४।।

अर्थः- जो संकल्पोंकी कल्पनासे छूट गया है, रागद्वेषसे रहित है और निरन्तर आनन्दस्वरूप शुद्धात्मामें लीन रहता है ऐसा मन ही सामायिक माना गया है ।।८४।।

अतीतं च भविष्यच्च यन्न स्मरति मानसम् ।
तत्सामायिकमित्याहु र्निर्वातस्थानदीपवत् ।।८५।।

अर्थः- जो मन अतीत और अनागतका स्मरण नहीं करता है अर्थात् पूर्व भुक्त भोगोंका स्मरण तथा अनागत भोगोंकी आकांक्षा नहीं करता है तथा वायुरहित स्थानमें रखे हुए दीपकके समान निश्चल रहता है वह सामायिक है, ऐसा कहते हैं ।।८५।।

निःसंगं च निराकारं निराभासं निराश्रयम् ।
पुण्यपापविनिर्मुक्तं मनः सामायिकं स्मृतम् ।।८६।।

अर्थः- निःसङ्ग - परकी इच्छासे रहित, निराकार - निर्विकल्प, निराभास - मिथ्यावासनासे शून्य, निराश्रय - परके आलम्बनसे रहित और पुण्य पापके विकल्पसे निर्मुक्त मन सामायिक माना गया है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ:- मनकी उपर्युक्त परिणति ही सामायिक कहलाती है ।।८६।।

गते शोको न यस्यास्ति न च हर्ष: समागमे ।
शत्रुमित्रसमं चित्तं सामायिकमिहोच्यते ।।८७।।

अर्थ:- जिसे नष्ट हुई वस्तुमें शोक नहीं है, इष्ट वस्तुके समागममें हर्ष नहीं है तथा जो शत्रु और मित्रमें समान रहता है ऐसा मन ही इस जगत्में सामायिक कहा जाता है ।।८७।।

यत्प्रसर्पति लोकेऽस्मिन् शास्त्रं कुकविभि: कृतम् ।
अविद्या सा विनिर्दिष्टा सा मता भवकारणम् ।।८८।।

अर्थ:- इस लोकमें कुकवियोंके द्वारा रचा हुआ जो शास्त्र विस्तारको प्राप्त हो रहा है वह अविद्या कही गयी है, यह अविद्या संसारका कारण मानी गयी है ।।८८।।

यथा रात्रौ तमोमूढा नैव पश्यन्ति जन्तव: ।
न चेक्षन्ते तथा तत्त्वमविद्यातमसावृता ।।८९।।

अर्थ:- जिसप्रकार रात्रिमें अन्धकारसे मोहको प्राप्त हुए जीव कुछ नहीं देखते हैं उसी प्रकार अज्ञानरूपी अन्धकारसे आच्छादित जीव यथार्थ तत्त्वको नहीं देखते हैं ।।८९।।

मोहमायामयी दुष्टा साधूनां मोक्षकाङ्क्षिणाम् ।
सिद्धिमार्गार्गला नित्यमविद्या निर्मिता भुवि ।।९०।।

अर्थ:- मोक्षके इच्छुक साधुओंके लिए यह मोहमायामयी दुष्ट अविद्या पृथिवीपर मोक्षमार्गकी आगलके समान निर्मित की गयी है ।

भावार्थ:- जिसप्रकार किसी नगरके द्वारपर सुदृढ़ आगल लगा होता है तो उसमें किसीका प्रवेश नहीं हो पाता । इसीप्रकार मोक्षनगरके द्वारपर यह मोह मायामयी सुदृढ़ आगल लगा हुआ है इसके रहते साधुओंका मोक्षनगरमें प्रवेश करना सम्भव नहीं है ।।९०।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एवं ज्ञात्वा बुधैर्नित्यं स्वात्मनो हितवाञ्छया ।
अविद्या दूरतस्त्याज्या न श्रोतव्या कदाचन ।।९१।।

अर्थः- ऐसा जानकर ज्ञानीजनोंको आत्महितकी इच्छासे वह अविद्या दूरसे छोड़ देनी चाहिए, उसे कभी सुनना नहीं चाहिए ।।९१।।

सर्वज्ञोपज्ञसद्विद्या भवविच्छेदकारणम् ।
सैव सेव्या सदा सद्भिर्मोक्षमार्गप्रकाशिका ।।९२।।

अर्थः- सर्वज्ञदेवके द्वारा सर्व प्रथम जानी हुई सद्विद्या ही संसारके विच्छेदका कारण है तथा मोक्षमार्गको प्रकाशित करनेवाली है इसलिये सत्पुरुषोंको सदा उसीकी उपासना करनी चाहिए ।।९२।।

सत्त्वं रजस्तमश्चापि शरीरान्तर्गुणत्रयम् ।
रजस्तमःसु संतापात् सत्त्वमेकं समाश्रयेत् ।।९३।।

अर्थः- सत्त्व, रजस् और तमस् ये तीन गुण शरीरके भीतर विद्यमान हैं । इनमें रजस् और तमस् गुणमें सन्ताप होता है अतः एक सत्त्वगुणका ही आश्रय लेना चाहिए ।।९३।।

सत्त्वं सर्वगुणाधारं सत्त्वं धर्मधुरन्धरम् ।
संसारनाशनं सत्त्वं सत्त्वं स्वर्गापवर्गदम् ।।९४।।

अर्थः- सत्त्वगुण समस्त गुणोंका आधार है । सत्त्वगुण, समस्त धर्मोंमें धुरंधर है, सत्त्वगुण संसारका नाश करनेवाला है और सत्त्वगुण स्वर्ग तथा मोक्षको देनेवाला है ।।९४।।

कामक्रोधादिदुर्भाव-रहितं शुद्धचिन्मयम् ।
चित्तं समुच्यते सत्त्वं संसाराशर्मनाशनम् ।।९५।। ❀

❀ यह श्लोक मूल प्रतिमें त्रुटित है अतः प्रकरणसंगतिके लिए नवीन मिलाया गया है । - अनुवादक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थः- जो काम-क्रोधादि दुष्ट भावोंसे रहित है, शुद्ध चैतन्यसे तन्मय है तथा संसारके दुःखोंका नाश करनेवाला है ऐसा चित्त, सत्त्वगुण कहा जाता है ।।९५।।

निरालम्बे निराभासे सदानंदपरे शुभे ।
सतां ध्यानमये सौधे सत्त्वं स्तम्भो दृढोमतः ।।९६।।

अर्थः- निरालंब मिथ्या वासनासे रहित तथा आत्मोत्थ आनन्दके स्थान शुभ ध्यानरूपी महलमें सत्त्वं गुण सुदृढ़ स्तम्भ माना गया है ।

भावार्थः- जिस प्रकार महल सुदृढ़ खंभों पर खड़ा होता है उसी प्रकार परके आलंबनसे रहित शुद्धध्यान - सत्त्वगुण पर निर्भर करता है ।।९६।।

यथावह्निलवेनापि दह्यते दारुसंचयः ।
कर्मेन्धनानि दह्यन्ते तथा ध्यानलवेन तु ।।९७।।

अर्थः- जिसप्रकार अग्निके एक कणके द्वारा भी बहुत भारी काष्ठका समूह जला दिया जाता है उसीप्रकार ध्यानके एक अंशके द्वारा भी कर्मरूपी ईंधनका समूह जला दिया जाता है ।।९७।।

यः सदा स्नाति योगीन्द्रो ध्यानस्वच्छमहाजले ।
क्षणमेकं कथं तिष्ठेत् तस्मिन् कर्म रजोमलम् ।।९८।।

अर्थः- जो योगी निरन्तर ध्यानरूपी स्वच्छ जलमें स्नान करता है उसपर कर्मरूपी धूलिका मैल एक क्षणके लिए भी कैसे ठहर सकता है ? ।।९८।।

न स्पृशेत् पद्मिनीपत्रे यथा तोयं स्वभावतः ।
पाषाणो भिद्यतेनैव जलमध्ये स्थितो यथा ।।९९।।
यथा वा मेघसंघाताः प्रलीयन्तेऽनिलाहताः ।
शुक्लध्यानेन कर्माणि क्षीयन्ते योगिनां तथा ।।१००।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थः- जिसप्रकार पानी स्वभावसे कमलपत्रका स्पर्श नहीं करता है और जिसप्रकार जलके भीतर स्थित पाषाण जलके द्वारा नहीं भेदा जाता है । अथवा जिसप्रकार वायुसे ताड़ित मेघोंके समूह अपने आप छिन्न-भिन्न हो जाते हैं उसीप्रकार शुक्लध्यानके द्वारा योगियोंके कर्म नष्ट हो जाते हैं ।।१००।।

स्फटिको बहुरूपः स्याद् यथैवोपाधिभेदतः ।
न लिप्यते तथा पापैरात्मा सद्ध्यानसंश्रितः ।।१०१।।

अर्थः- जिसप्रकार स्फटिकमणि, समीपमें रखी हुई लाल पीली आदि डांकके भेदसे अनेक प्रकार हो जाता है परन्तु परमार्थसे उन रंगोंको ग्रहण नहीं करता है इसीप्रकार समीचीन ध्यानको प्राप्त हुआ आत्मा पापोंसे लिप्त नहीं होता है ।।१०१।।

शुक्लध्यानसमायोगाद् ब्रह्मवत् ब्रह्मणि स्थिति : ।
भूमिस्थोऽपि भजेद्योगी शाखाग्रफलमुत्तमम् ।।१०२।।

अर्थः- शुक्लध्यानके समायोगसे इस जीवकी ब्रह्मके समान - आत्मध्यानमें लीन आदि ब्रह्मा भगवान् वृषभदेवके सदृश ब्रह्म - स्वशुद्धात्ममें स्थिति हो जाती है तथा ध्यान के प्रभावसे योगीको ऐसी ऋद्धि उत्पन्न हो जाती है कि वे भूमिमें स्थित रहते हुए शाखामें संलग्न उत्तम फलको प्राप्त कर लेते हैं ।।१०२।।

मुक्तिश्रीपरमानंदो ध्यानेनानेन योगिनाम् ।
रूपातीतं निराकारं ध्यानं ध्येयं ततोऽनिशम् ।।१०३।।

अर्थः- क्योंकि इस ध्यानके द्वारा योगियोंको मुक्तिलक्ष्मीका परमानन्द - उत्कृष्ट आत्मोत्थ सुख प्राप्त होता है इसलिए निराकार रूपातीत ध्यानका निरन्तर ध्यान करना चाहिए ।।१०३।।

ग्रंथानभ्यस्य तत्त्वार्थ-तत्त्वज्ञानं पुनः सुधीः ।
पलालमिव धान्यार्थी-त्यजेद् ग्रंथाननेकशः ।।१०४।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थः- ज्ञानी मनुष्य, तत्त्वरूप पदार्थोंका यथार्थ ज्ञान प्राप्त करनेके लिए ग्रन्थोंका अभ्यास कर, पश्चात् जिसप्रकार धान्यका इच्छुक मनुष्य धान्यको लेकर पलालको छोड़ देता है उसीप्रकार तत्त्वज्ञानको प्राप्तकर अनेक ग्रन्थोंको छोड़ देवे ।

भावार्थः- द्रव्यश्रुतकी उपयोगिता भावश्रुतके ग्रहण करनेमें है अतः भावश्रुतके होने पर द्रव्यश्रुतका विकल्प छूट जाता है ।।१०४।।

क्षीयंते यानि कालेन किं तैः कर्तव्यमक्षरैः ।
यावन्नोऽनक्षरं प्राप्तं तावन्मोक्षे कुतः सुखम् ।।१०५।।

अर्थः- जो अक्षर कालके द्वारा नष्ट हो जाते हैं उन अक्षरोंसे क्या कार्य है ? जब तक अनक्षर - अक्षरातीत अथवा अविनाशी केवलज्ञान प्राप्त नहीं होता है तब तक मोक्षका सुख कैसे हो सकता है ?

भावार्थः- अक्षर दो प्रकारके हैं एक उच्चारणरूप और दूसरे लिपिरूप । ये दोनोंप्रकारके अक्षर विनाशीक हैं अतः इन अक्षरोंसे प्रयोजन नहीं है । किन्तु इन द्रव्य अक्षरोंसे जो ज्ञान प्राप्त होता है वह भाव श्रुतज्ञान उपादेय है । परमार्थसे यह भाव श्रुतज्ञान भी सीमित और अल्पकाल तक रहनेवाला है अतः वह भी त्याज्य है । इसके स्थान पर जो अक्षरातीत अविनाशी केवलज्ञान प्राप्त होता है वही उपादेय है । मोक्षकी प्राप्ति इस केवलज्ञानकी प्राप्तिपूर्वक ही होती है । इस केवलज्ञानके बिना अनन्त सुखकी उपलब्धि नहीं होती । सुखका घातक मोह कर्मका क्षय हो जानेपर भी १२ वें गुणस्थानमें अनन्त सुखकी प्राप्ति नहीं होती परन्तु तेरहवें गुणस्थानमें जब केवलज्ञान प्राप्त हो जाता है तभी अनन्त सुखकी प्राप्ति होती है ।।१०५।।

ध्यानकल्पतरुर्लोके ज्ञानपुष्पैः सुपुष्पितः ।
मोक्षामृतफलैर्नित्यं फलितोऽयं सुखप्रदः ।।१०६।।

अर्थः- यह सुखदायक ध्यानरूपी कल्पवृक्ष, लोकमें सदा ज्ञानरूपी पुष्पोंसे पुष्पित और मोक्षरूपी अमृतफलसे फलित रहता है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ:- ध्यानसे सम्यग्ज्ञान और सम्यग्ज्ञानसे मोक्षकी प्राप्ति होती है ।।१०६।।

तथा कुरु यथा शुक्ल- ध्यानवृक्षसमाश्रित: ।
विज्ञानात् ज्ञानपुष्पाणि - लभेन्मोक्षफलं बुध: ।।१०७।।

अर्थ:- हे भव्य ! तू ऐसा प्रयत्न कर कि जिससे शुक्लध्यानरूपी वृक्षपर आरूढ़ हुआ विद्वान् प्रथम विज्ञान - पर पदार्थसे भिन्न शुद्ध ज्ञायक स्वभाववाले आत्माका पृथक् अनुभव कर केवलज्ञानरूपी पुष्पको प्राप्त करे और उसकें पश्चात् मोक्षरूपी फलको प्राप्त कर सके ।।१०७।।

अस्मिन्नेव भवेत् शून्यं व्योमरूपं सनातनात् ।
शुक्लध्यानात् सदानंदो योगी मुक्तिपदं व्रजेत् ।।१०८।।

अर्थ:- इसी शुक्लध्यानमें यह जगत् आकाशरूप होता हुआ शून्य प्रतिभासित होने लगता है अर्थात् ध्याताका मन एक ओरसे उठनेवाले संकल्प - विकल्पोंसे रहित हो जाता है और उस श्रेष्ठतम शुक्लध्यानसे आत्मोत्थ परम आनंदका अनुभव करता हुआ मुक्तिपदको प्राप्त होता है ।।१०८।।

ज्ञानदर्शनचारित्ररूपरत्नत्रयात्मकम् ।
योगी मुक्तिपदं प्राप्तोह्युपाय: परिकीर्त्यते ।।१०९।।

अर्थ:- सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्ररूप रत्नत्रयसे तन्मय मुक्तपद - मोक्षपदको प्राप्त हुआ योगी निश्चयसे उपाय - मोक्षप्राप्तिका साधन कहा जाता है ।

भावार्थ:- रत्नत्रयके साथ अभेद दशाको प्राप्त हुआ योगी ही मोक्षपदको प्राप्त होता है अत: वही मोक्षका साक्षात् - उपादान कारण है ।।१०९।।

व्यापारच्छिन्नसंसारसंयोगो मुक्तियोगक: ।
विभक्त: संयमाद्यङ्गै: सोऽपि स्यादष्टधा पुन: ।।११०।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थः- जिसमें आत्मचिन्तनरूप व्यापारसे संसारका संयोग छिन्न - भिन्न हो जाता है तथा जो मुक्तिको प्राप्त करानेवाला है ऐसा वह योग संयमादि अंगोंके द्वारा विभक्त होता हुआ आठ प्रकारका होता है ।।११०।।[१]

मालिनी छन्द

मणि - हुतवहतारा - सोम - सूर्यादयोऽपि
कृतिविषयमिहाल्पं बाह्यमुद्योतयन्ति ।
सहजलयसमुत्थं द्योतयेज्ज्योतिरन्तस्
त्रिभुवनमपि सूक्ष्मस्थूलभेदं सदैव ।।१११।।

अर्थः- मणि, अग्नि, तारा, चन्द्रमा और सूर्य आदि तेजस्वी पदार्थ इस जगत्में अत्यन्त अल्प बाह्य पदार्थोंको प्रकाशित करते हैं परन्तु सहज स्वभावमें लीनतासे उत्पन्न सूक्ष्म तथा स्थूल भेदरूप अन्तर्ज्योति तीनों लोकोंको सदा ही प्रकाशित करती है ।।१११।।

परानन्दास्पदं ज्ञेयं लक्ष्यं स्वानुभवात् परम् ।
अधस्ताद् द्वादशान्तस्य ध्यायेन्नादमनाहतम् ।।११२।।

अर्थः- जो परानन्दका स्थान है, स्वानुभवसे जो लक्ष्यमें आता है तथा उत्कृष्ट ज्ञेयस्वरूप है ऐसे अनाहतनाद[२] का द्वादशान्तके नीचे ध्यान करना चाहिए ।।११२।।

तैलधाराभिवाच्छिन्नं दीर्घघण्टानिनादवत् ।
लयं प्रणवनादस्य योऽसावेति स योगवित् ।।११३।।

अर्थः- जो तैलकी धाराके समान अखण्ड है, विशाल घण्टाके शब्दके समान दीर्घकाल तक गूँजता रहता है तथा ओंकार ध्वनिका जिसमें लय होता है ऐसे अनाहतको जो प्राप्त होता है वह योगवित् - योगका ज्ञाता है ।।११३।।

---

१ १११ वें श्लोकसे योगके ८ अंगोंका वर्णन शुरु कर उसका संबंध १३४ वें श्लोकसे मिलाया है ।
- अनुवादक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घण्टानादो यथा प्रांते विश्रामान्मधुरो भवेत् ।
अनाहतोऽपि नादो हि तथा शांतो विभाव्यताम् ।।११४।।

अर्थः- जिसप्रकार घण्टाका शब्द अन्तमें विश्रान्त होनेसे मधुर होता जाता है – श्रुतिसुखद जान पड़ता है उसीप्रकार अनाहतनाद भी शांत होता हुआ मधुर जान पड़ता है ऐसा जानना चाहिए ।।११४।।

नदत्यव्यक्तरूपेण सर्वभूतहृदि स्थितः ।
प्रत्यक्षं सर्व भूतानां दृश्यते नैव लक्ष्यते ।।११५।।

अर्थः- यह अनाहतनाद समस्त प्राणियोंके हृदयमें स्थित है तथा अव्यक्त रूपसे शब्द करता है, सब प्राणियोंको इसका प्रत्यक्ष होता है परन्तु लक्ष्यमें नहीं आता अर्थात् सूक्ष्म होनेसे दृष्टिमें नहीं आता ।।११५।।

अक्षरध्वनिनिर्मुक्तं निस्तरंगं समे स्थितम् ।
यच्चित्तं सहजावस्थं स नादस्तेन भिद्यते ।।११६।।

अर्थः- अक्षरोंकी ध्वनिसे रहित, निस्तरंग – निर्विकल्प अथवा निश्चल, साम्यभावमें स्थित तथा सहजावस्थासे युक्त जो चित्त है उसके द्वारा ही उस नादका भेद होता है – उसका रहस्य खुलता है ।।११६।।

तावदेवेन्द्रियाण्यत्र कषायास्तावदेव हि ।
अनाहते मनोनादे यावल्लीनं न योगिनः ।।११७।।

अर्थः- इस जगत्में इन्द्रियाँ तभी तक रहती हैं और कषाय भी तभी तक विद्यमान होती हैं जब तक योगीका मन अनाहतनादमें लीन नहीं होता है ।।११७।।

सौख्यं वैषयिकं तावत् सुरम्यं प्रतिभासते ।
अनाहतलयोत्पन्नं सुखं यावन्न लिप्यते ।।११८।।

---

२ इसका लक्षण १२९ वें श्लोकमें ग्रन्थकर्ताने स्वयं किया है । – अनुवादक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थः- विषय सम्बन्धी सुख तभीतक रम्य जान पड़ता है जबतक अनाहतलयसे उत्पन्न सुख प्राप्त नहीं होता है ।।११८।।

जन्मलक्षार्जितं कर्म ध्यानज्ञानेन योगिनः ।
तमः सूर्योदये नैव सर्वं नश्यति तत्क्षणात् ।।११९।।

अर्थः- जिसप्रकार सूर्योदयके द्वारा समस्त अन्धकार तत्काल नष्ट हो जाता है उसीप्रकार इस अनाहत ध्यानके ज्ञानके द्वारा योगीका लाखों जन्मोंमें संचित किया हुआ कर्म नष्ट हो जाता है ।।११९।।

स्थूलं सूक्ष्मं च साकारं शुभध्यानमपि स्फुटम् ।
रूपातीतं निराकारं समाख्यातमिहोच्यते ।।१२०।।

अर्थः- स्थूल और सूक्ष्म भेदवाला जो साकार शुभ ध्यान है, वह स्पष्ट है । यहाँ रूपातीत नामका जो निराकार ध्यान कहा गया है उसके विषयमें कुछ कहा जाता है ।।१२०।।

निराकारमपि ध्यानं रूपातीतं समुज्ज्वलम् ।
स्थूलसूक्ष्मविभेदेन द्विविधं परिकीर्तितम् ।।१२१।।

अर्थः- जो रूपातीत नामका अतिशय उज्ज्वल ध्यान है वह भी सूक्ष्म और स्थूलके भेदसे दो प्रकारका कहा गया है ।।१२१।।

शरीरं सकलं त्यक्त्वा ब्रह्मद्वारे स्थिरं मनः ।
क्रियते यत्र तत्सूक्ष्मं निराकारं तदुच्यते ।।१२२।।

अर्थः- जिसमें समस्त शरीरको छोड़कर मन ब्रह्मद्वारमें स्थिर किया जाता है वह सूक्ष्म निराकार ध्यान कहा जाता है ।।१२२।।

निराकारमपि ध्यानं रूपातीतं निरञ्जनम् ।
ध्यायेत् ध्यानं हि तद्योगी मुक्तिसौख्याभिलाषया ।।१२३।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ:- योगीको मुक्ति सुखकी अभिलाषासे इस रूपातीत निरञ्जन ध्यानका ध्यान करना चाहिए ।।१२३।।

ध्याने चानाहते शब्दे नित्याभ्यासप्रयोगत: ।
द्वादशांते निराकारे मनोयोगी निवेशयेत् ।।१२४।।

अर्थ:- योगीको चाहिए कि वह नित्य अभ्यासके प्रयोगसे अनाहत शब्दके ध्यानमें तथा निराकार द्वादशान्तमें अपना मन लगावे ।।१२४।।

गच्छन् वा यदि वा सुप्तो वालापे यदि भोजने ।
न कचिद् त्यजति ध्यानं कथितं योगपारगै: ।।१२५।।

अर्थ:- योगी चल रहा हो वा सो रहा हो अथवा वार्तालाप कर रहा हो अथवा भोजन कर रहा हो, वह कहीं भी ध्यान नहीं छोड़ता है ऐसा योगके पारगामियोंके द्वारा कहा गया है ।।१२५।।

बाह्यमाभ्यन्तरं योगी त्यक्त्वा मानं द्विधापि च ।
ब्रह्मद्वारं निराकारं परमात्मपदं श्रयेत् ।।१२६।।

अर्थ:- योगी बाह्य और आभ्यन्तर - दोनों प्रकारका मान छोड़कर निराकार ब्रह्मद्वाररूप परमात्म पदका आश्रय लेवे ।।१२६।।

निष्कलो निर्मम: शांतो सर्वज्ञ: शुभद: प्रभु: ।
स एव भगवान् देवो विज्ञेयो हि निरञ्जन: ।।१२७।।

अर्थ:- वह परमात्मा निष्कल - शरीर रहित है, ममता रहित है, शान्त है, सर्वज्ञ है, शुभको देनेवाला है, प्रभु है और उसे ही निरञ्जन भगवान् जानना चाहिए ।।१२७।।

एकाङ्गुलपरिमाणं सुवृत्तं व्योमसन्निभम् ।
योगीन्द्र: प्रथमं यावद् द्वादशांतं विचिन्तयेत् ।।१२८।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ:- योगी सर्वप्रथम उस द्वादशान्तका चिन्तवन करे जो एक अंगुल प्रमाण, गोलाकार तथा आकाशके समान है ।।१२८।।

नेत्रमण्डलसंस्थायी द्वादशात्मा निगद्यते ।
तस्मादपूर्वगं ब्रह्म द्वादशान्तं ततः स्मृतम् ।।१२९।।

अर्थ:- नेत्रमण्डलमें स्थित जो चक्र है वह द्वादशात्मा (सूर्य) कहलाता है और उससे पश्चिमकी ओर जो चक्र है वह ब्रह्म द्वादशान्त माना गया है ।।१२९।।

नादबिन्दुकलातीतं परमात्मकलायुतम् ।
द्वादशांतं सदा ध्यायेत् सदानन्दैकमन्दिरम् ।।१३०।।

अर्थ:- जो नाद बिन्दुकी कलासे रहित तथा परमात्म, कलासे युक्त है तथा समीचीन आनन्दका एक मन्दिर है ऐसे द्वादशान्तका सदा ध्यानकरना चाहिए ।।१३०।।

स्रग्धरा

रुद्ध्वा योगी कषायप्रसरमिति चलानिन्द्रियान् स्वे निषिध्य
कृत्वा ज्ञानाङ्गमन्तः परमसुखपदप्राप्तये शुद्धबुद्धिः ।
कृत्वा चित्तं स्थिरं स्वं समरसकलितं सत्त्वमालम्ब्य गाढं
ध्यानं ध्यात्वा यते च प्रतिदिन ममलं शुद्धधर्मं जिनेन्द्रः ।।१३१।।

अर्थ : इसप्रकार जिनेन्द्रानुयायी शुद्ध बुद्धिका धारक योगी कषायोंके प्रसारको रोक कर, चञ्चल इन्द्रियोंको अपने आपमें अवरुद्ध कर परमसुखरूप पदकी प्राप्तिके लिए ज्ञानोपयोगको अन्तर्मुखी कर, अपने चित्तको स्थिर तथा समरससे युक्त कर, सत्त्व - धैर्यका प्रगाढ आलम्बन लेकर तथा प्रतिदिन ध्यान धारण कर निर्मल शुद्ध धर्मको प्राप्त होता है ।

भावार्थ : मोह और क्षोभसे रहित आत्माके साम्य परिणामको शुद्ध धर्म कहते हैं । उस शुद्ध धर्मकी प्राप्तिके लिए जैन योगी सर्वप्रथम क्रोधादि कषोयोंके विस्तार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथवा समूहको रोकता है । फिर चञ्चल इन्द्रियोंको अपने आपमें स्थिर करता है, पश्चात् अनाकुलतारूप लक्षणसे युक्त परमसुखकी प्राप्तिके लिए अपने ज्ञानोपयोगकी अन्तर्मुखी प्रवृत्ति करता है अर्थात् अपने ज्ञानका ज्ञेय स्वकीय आत्माको बनाता है, तदनन्तर रागद्वेषसे रहित शुद्ध बुद्धिका धारक होता हुआ चित्तको स्थिर तथा समरस-साम्यभावरूप सुधासे परिपूर्ण करता है पश्चात् वीतरागभावका आलम्बन कर प्रतिदिन ध्यानका अभ्यास करता है । ऐसा करनेसे वह स्वयं निर्मल धर्मको प्राप्त होता है अर्थात् धर्ममय हो जाता है ।।१३१।।

शार्दूलविक्रीडितम्

छित्वासंसृतिपाशमान्तरमलं जित्वाथ मोहादिकम्
दीक्षां मोहहरीं प्रपद्य स बुधः पार्श्वप्रभोरुद्यतः ।
ब्रह्मध्यानमयेन केवलमतो ज्ञानं न मत्यादिकम् ।
प्रापन्मुक्तिपदं सदासुखमयं क्षीणाष्टकर्मा क्रमात् ।।१३२।।

अर्थः- इसप्रकारका ध्यान कर मुक्तिपदको प्राप्त करनेवाले किसी योगीका वर्णन करते हुए ग्रन्थकार कहते हैं - कि वह ज्ञानी, पार्श्व प्रभुसे मोहको हरनेवाली दीक्षा प्राप्त कर, संसाररूपी पाशको छेदकर, मोहादिक अन्तरङ्ग मलको जीतकर तथा आत्मध्यानके द्वारा मतिज्ञानादि क्षायोपशमिक ज्ञानोंके विकल्पसे रहित केवलज्ञानको प्राप्त कर क्रमसे आठ कर्मोंको नष्ट कर सदा सुखसे तन्मय मुक्तिपदको प्राप्त हुआ ।।१३२।।

आगे योगके आठ अङ्गोंका वर्णन करते हैं :

संयमो नियमश्चैव करणं च तृतीयकम् ।
प्राणायामः प्रत्याहारः समाधिर्धारणा तथा ।।१३३।।
ध्यानं चेतीह योगस्य ज्ञेयमष्टाङ्गकं बुधैः ।
पूर्णाङ्गैः क्रियमाणोऽसौ मुक्त्यै स्यादसुभृताम् ।।१३४।।

अर्थः- संयम, नियम, करण, प्राणायाम, प्रत्याहार, समाधि, धारणा और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ध्यान ये योगके आठ अंग विद्वानोंके द्वारा जानने योग्य हैं । इन समस्त अंगोंके द्वारा किया हुआ योग, प्राणियोंकी मुक्तिके लिए होता है ।।१३३-१३४।।

अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यमसंगता ।
इत्येतानि व्रतान्यत्र संयमः पञ्चधा स्मृतः ।।१३५।।
शौचं तपश्च संतोषः स्वाध्यायो देवतास्मृतिः ।
नियमः पञ्चधा ज्ञेयः करणं पुनरासनम् ।।१३६।।

अर्थः- अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, और अपरिग्रह ये व्रत हैं. इस योगके प्रकरणमें यही पाँच प्रकारका संयम माना गया है ।।१३५।।

शौच, तप, सन्तोष, स्वाध्याय और देवका स्मरण यह पाँच प्रकारका नियम जानना चाहिए । करण, आसनको कहते है।।१३६।।

श्वासप्रश्वासयोः स्थैर्यं प्राणायामो भवेत् पुनः ।
प्रत्याहारो विषयेभ्यश्चेन्द्रियाणां समाहृतिः ।।१३७।।

अर्थः- श्वासोच्छ्वासकी स्थिरता प्राणायाम है तथा विषयोंसे इन्द्रियोंकी निवृत्ति करना प्रत्याहार है ।।१३७।।

समाधिर्भवहन्तॄणां वाक्यानामर्थचिंतनम् ।
स्थैर्यहेतुर्भवेद् ध्यानं धारणा चित्तयोजनात् ।।१३८।।

अर्थः- संसारका नाश करनेवाले वाक्योंके अर्थका चिन्तन करना समाधि है । स्थिरताका जो कारण है वह ध्यान है तथा पदार्थके चिन्तनमें चित्तका लगाना धारणा कहलाती है ।।१३८।।

स्थूले वा यदि वा सूक्ष्मे साकारे च निराकृतौ ।
ध्यानं ध्येये स्थिरं चित्तमेकं प्रत्ययसंगतम् ।।१३९।।

अर्थः- ध्यान चाहे स्थूल हो, सूक्ष्म, साकार हो, चाहे निराकार । ध्येय-ध्यान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करने योग्य पदार्थपर चित्तका स्थिर हो जाना ही सबसे प्रमुख प्रत्यय है, ध्यानका कारण है ।।१३९।।

एवं योगाभवन्त्यङ्गैरष्टधा संयमादिभिः ।
सर्वातिशयसंपन्नं ध्यानं कल्याणकारणम् ।।१४०।।

अर्थः- इसप्रकार संयमादि अंगोंके द्वारा योग आठ प्रकारका होता है । समस्त अतिशयोंसे युक्त ध्यान ही कल्याणका कारण होता है ।।१४०।।

⁂ इति योगप्रदीपप्रकरणं समाप्तम् ⁂

(इसप्रकार योगप्रदीपप्रकरण समाप्त हुआ)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कर्मारिवीरमानम्य प्रोच्यमानं मया तव ।
सद्ध्यानं शृणु मुक्तात्मन् मुक्तिलक्ष्मीपदं परम् ।।१४१।।

अर्थ:- हे मुक्तात्मन्! कर्मरूपी शत्रूओंको नष्ट करनेके लिए शूरवीर श्री भगवान् महावीरको नमस्कार कर मैं तेरे लिए मुक्तिररूपी लक्ष्मीका स्थानस्वरूप उत्कृष्ट ध्यान कहता हूँ सो श्रवण कर ।।१४१।।

चिदानन्दोऽसि सिद्धोऽसि बुद्ध एवासि बन्धुरः ।
त्वं जीवासि परं ज्योतिर्निराकारोऽसि सर्वदा ।।१४२।।

अर्थ:- हे आत्मन्! तू चिदानन्द है, सिद्ध है, बुद्ध है, मनोहर है, परंज्योतिस्वरूप है और सर्वदा निराकार है ।।१४२।।

देहवाञ्छां त्याजामन्द धात्तुबन्धोऽयमञ्जसा ।
पूर्णो मूत्रपुरीषाभ्यां क्षणं योगेन भङ्गुरः ।।१४३।।

अर्थ:- हे अमन्द ! हे बुद्धिमन् ! तू शरीरकी इच्छा छोड़ । वास्तवमें यह धात्तुओंका बन्ध - शरीर मूत्र और मलसे भरा हुआ है तथा योगके द्वारा क्षणभरमें नष्ट हो जानेवाला है ।।१४३।।

उपकारशतेनापि सार्धं नैति कदाचन ।
एष वह्निप्रसङ्गेन भस्मत्वं समुपैष्यति ।।१४४।।

अर्थ:- यह शरीर सैकड़ों उपकार करने पर भी कभी साथमें नहीं जाता है । यह अग्निके संसर्गसे भस्मरूपको प्राप्त हो जायेगा ।।१४४।।

अस्य संबंधतो याता भूरिदारादयोऽपरे ।
कथं यान्ति त्वया साकं स्वकर्माधीनमानसा: ।।१४५।।

अर्थ:- इस शरीरके सम्बन्धसे नातेको प्राप्त हुए बहुत भारी स्त्री पुत्रादि अन्य पुरुष चले गये हैं । वे सब अपने अपने कर्मके आधीन हैं, तेरे साथ कैसे जावेंगे ? ।।१४५।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कारागारमिव गात्रं त्वमात्मन् विद्धि दुःसहम् ।
स्थातुं ते निर्मितं लेके कर्मणा क्रूरकर्मणा ।।१४६।।

अर्थः- हे आत्मन् ! तू ऐसा समझ, कि इस लोकमें क्रूर कर्मने तेरे रहनेके लिए दुःसह कारागारके समान यह शरीर निर्मित किया है – बनाया है ।।१४६।।

क्षुत्तृषार्तिमहाशोकजरान्यक्कारकारकम् ।
भयोपेतं सुबीभत्सं कफमासृग्मलाविलम् ।।१४७।।

अर्थः- यह शरीर क्षुधा-तृषाकी पीड़ा, महाशोक, वृद्धावस्था तथा तिरस्कारका करने वाला है, भय से सहित है, अत्यन्त घृणित है, कफ, आंव, रक्त और मलसे दूषित है ।।१४७।।

पुण्यपापक्षयान्मोक्षस्तत्प्रमाणेन तत्त्वतः ।
पुण्यं नित्यं न पापं च तत्फलं नापि निश्चलम् ।।१४८।।

अर्थः- 'पुण्य और पापके क्षयसे मोक्ष होता है' यह श्रुतिका वाक्य है । इसकी प्रमाणतासे यह बात परमार्थसे सिद्ध है कि न पुण्य नित्य है न पाप नित्य है और न उनका फल ही निश्चल है – नित्य है ।।१४८।।

महान् स्यात् पुण्यतो भोगः पापैराङ्क्यं महाद्भुतम् ।
चैतन्यभोगतो नैव तद्दुःखं न हि किञ्चन ।।१४९।।

अर्थः- पुण्यसे महान् भोगकी प्राप्ति होती है और पापसे अत्यन्त आंश्चर्यकारी दरिद्रता मिलती है परन्तु चैतन्यके भोगसे – ज्ञाता – दृष्टा स्वभावमें रमण करनेसे कुछ भी दुःखकी प्राप्ति नहीं होती ।।१४९।।

पुण्याद्भोगास्ततः पापं ततो दुःखं ततोऽश्रियः ।
एवं विचार्य जानीहि जीवस्य हितमञ्जसा ।।१५०।।

अर्थ : पुण्यसे भोग मिलते हैं, भोगोंसे पाप होता है, पापसे दुःख होता है, और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दु:खसे दरिद्रता होती है ऐसा विचारकर तू आत्माका वास्तविक हित जान ।।१५०।।

आत्मन् स्वयमिवात्मानं धर स्वात्मानमात्मनि ।
प्रयाहि पूततां चिन्तां विमुच्यान्यत्र सर्वथा ।।१५१।।

अर्थ:- हे आत्मन् ! तू अपने आपके द्वारा अपने आत्माको अपने आपमें धारण कर तथा अन्यत्रकी चिन्ताको सर्वथा छोड़कर पवित्रताको प्राप्त हो ।।१५१।।

देहोऽपरोऽपरश्चात्मा यस्येति चिन्तनं क्षणम् ।
जन्ममृत्युजरातीतं स एव पदमश्नुते ।।१५२।।

अर्थ:- शरीर अन्य है और आत्मा अन्य है ऐसा चिन्तन क्षणभरके लिए भी जिसके होता है, वही जन्म, जरा और मृत्युसे रहित पदको प्राप्त होता है ।।१५२।।

शुद्धो भावो भवेद्यस्य स एव सिद्धिवल्लभः ।
सोऽत्र रत्नत्रयं विद्धि न भिन्नं स्वात्मनः स्फुटम् ।।१५३।।

अर्थ:- जिसके शुद्ध भाव होता है वही मुक्तिका स्वामी होता है । वह शुद्ध भाव रत्नत्रय है ऐसा जानो तथा वह रत्नत्रय स्वात्मासे स्पष्ट ही भिन्न नहीं है ।

भावार्थ:- रत्नत्रय और आत्मामें प्रदेशभेद नहीं है इसलिए निश्चयसे अभिन्न कहा है परन्तु गुण-गुणीकी अपेक्षा व्यवहारसे भेद होता है ।।१५३।।

ध्यानं ध्येयं तथा ध्याता त्रयमेतद्वचोरसः ।
अकिञ्चनत्वमेवात्र कुरुते सिद्धि साधनम् ।।१५४।।

अर्थ:- ध्यान, ध्येय और ध्याता ये तीन तो वचनोंका परिणाम है, परमार्थसे अकिञ्चनत्व ही मुक्तिका साधन करता है ।

भावार्थ:- ध्यान, ध्येय और ध्याता इन तीनके विकल्पसे मोक्ष नहीं होता किन्तु इनका विकल्प समाप्त होनेपर इस जीवमें जो अकिञ्चनत्व भाव आता है अर्थात् शुद्ध ज्ञायक स्वभावको छोड़कर अन्य कुछ भी मेरा नहीं है, इस भावसे ही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मोक्षकी सिद्धि होती है ।।१५४।।

हिते रागोऽहिते द्वेषो ह्युक्तौ तौ भवहेतुकौ ।
स्वतत्त्वे विशदो भूयात् योगी शुद्धे निरामये ।।१५५।।

अर्थः- हितमें राग और अहितमें द्वेष ये दोनों संसारके हेतु कहे गये हैं अतएव योगीको शुद्ध तथा निरामय - नीरोग आत्मतत्त्वमें निमग्न होना चाहिए ।

भावार्थः- पर पदार्थोंमें इष्ट-अनिष्टका विकल्प छोड़कर स्वकीय शुद्धात्मतत्त्वमें दृढ़ रुचि करना चाहिए ।।१५५।।

शिवं दूरं भरेन्नात्र जिताक्षस्य स्वसंविदः ।
नरनागसुरेन्द्राणां पदं जीर्मतृणं यथा ।।१५६।।

अर्थः- जितेन्द्रिय तथा स्वसंवेदी पुरुषको इस जगत्में मोक्ष दूर नहीं है फिर नर, सुर और सुरेन्द्रका पद तो उसे जीर्ण तृणके समान है ।।१५६।।

चिन्तयत्यनिशं योगी स्वमचिन्त्यं यदा स्वयम् ।
अचिन्त्यपदकस्यायं स्वामी स्यान्न कथं तदा ।।१५७।।

अर्थः- जब कि यह योगी निरन्तर अचिन्तनीय स्वकीय आत्माका स्वयं चिन्तन करता है तब यह अचिन्त्यपद - मोक्षका स्वामी क्यों नहीं होगा ? अर्थात् अवश्य होगा ।।१५६।।

आत्मा शुद्धात्मसद्ध्यानात् मुक्तः स्यात् कर्मबन्धनात् ।
यद्वस्तु सेव्यते येन तद्गुणस्तस्य किं न हि ।।१५८।।

अर्थः- शुद्धात्माके समीचीन ध्यानसे आत्मा कर्मबन्धनसे मुक्त हो जाता है सो ठीक ही है क्योंकि जो वस्तु जिसके द्वारा सेवित होती है उस वस्तुका गुण क्या उसमें नहीं होता ? अर्थात् अवश्य होता है ।।१५८।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बहिरात्मा स एव स्याद्बहिर्विषयसन्मुखः ।
जितेन्द्रियोऽन्तरात्मा च परमात्मा स्वभावतः ।।१५९।।

अर्थः- बहिरात्मा वही होता है जो बाह्य विषयोंके सम्मुख होता है । इन्द्रियोंको जीतनेवाला अन्तरात्मा है और स्वभावका आश्रय लेनेवाला परमात्मा कहलाता है ।।१५९।।

त्रिप्रकारः स एवात्मा विज्ञेयो ध्यानयोगतः ।
स्वाभावं न करोत्यात्मा तं विना भव्यतागुणम् ।।१६०।।

अर्थः- जो आत्मा, बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्माके भेदसे तीन प्रकारका है वही ध्यानके योगसे जाना जाता है । यह आत्मा भव्यता गुणके बिना स्वभावको नहीं करता है ।

भावार्थः- भव्य और अभव्यके भेदसे जीवके दो भेद हैं । जो रत्नत्रयरूप पर्यायसे युक्त होगा वह भव्य है और जिसमें रत्नत्रयरूप पर्यायके प्रकट करनेकी योग्यता नहीं है वह अभव्य है । स्वकीय शुद्धस्वभावकी प्रकटता भव्य जीवके ही होती है अभव्यको नहीं ।।१६०।।

त्यक्त्वात्मानं व्रजन्त्येता राजरूपादिसंपदः ।
तद्दुःखकर्दमा यान्ति पुण्यस्यच्छद्मना पुनः ।।१६१।।

अर्थः- ये राज्य तथा रूपादिकी सम्पदाएं आत्माको छोड़कर चली जाती हैं । पुण्यके छलसे उसे फिर उन सम्दाओंके वियोगसे उत्पन्न दुःखरूपी पंक ही प्राप्त होता है ।।१६१।।

भोगारोगा इवानल्पमहाक्लेशप्रदायिनः ।
तेषु धत्ते रतिं नात्र विसृज्यात्ममतिं सुधीः ।।१६२।।

अर्थः- ये भोग, रोगके समान बहुत भारी महान् क्लेशको देनेवाले हैं इस लिए बुद्धिमान् मनुष्य आत्मबुद्धिको छोड़कर उन भोगोंमें प्रीतिको धारण नहीं करता है ।।१६२।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुखदुःखद्वयं त्यक्त्वा समानं नित्यमात्मनि ।
स्थिरीभवति यो योगी स्वकीयं तस्य तत्पदम् ।।१६३।।

अर्थः- जो योगी सुख और दुःख दोनोंको समानरूपसे छोड़कर निरन्तर आत्मामें स्थिर होता है उससे वह स्वकीय पदको प्राप्त होता है ।।१६३।।

निर्धनत्वं धनं नित्यं मरणं जीवितं स्थितम् ।
शत्रौ मित्रे समाना च स्थितिः स्याद्योगिनामिति ।।१६४।।

अर्थः- योगियोंकी ऐसी स्थिति होती है कि वे निर्धनताको ही नित्य धन मानते हैं, मरण ही उनके लिए जीवन है और शत्रु तथा मित्र में उनकी समान भावना होती है ।।१६४।।

गुरुदीपं विना शुद्धमात्मतत्त्वं वपुःस्थितम् ।
शास्त्रज्ञोऽपि न जानाति महामोहतमश्चयः ।।१६५।।

अर्थः- जो महा मोहरूपी अन्धकारके समूहसे युक्त है ऐसा शास्त्रका ज्ञाता पुरुष भी गुरुरूपी दीपकके बिना शरीरमें स्थित शुद्ध आत्मतत्त्वको नहीं जानता है ।।१६५।।

यत्कृते कुरुषे पापं मोहतो वपुरादिकम् ।
तत्कुटुम्बं न जीवानां शरण्यं स्याच्चतुर्गतिः ।।१६६।।

अर्थः- मोहवश तू जिसके लिए पाप करता है वह शरीर आदिक तथा कुटुम्ब, चतुर्गतिरूप संसारमें इन जीवोंके लिए शरणस्वरूप नहीं है - कोई भी इनकी रक्षा करनेवाले नहीं हैं ।।१६६।।

इन्द्रियाण्यपि सर्वाणि गात्राण्यपि च सर्वदा ।
तद्धेतुष्वर्थसार्थेषु शून्यं स्याद्योगिनां मनः ।।१६७।।

अर्थः- सभी इन्द्रियाँ और शरीर तथा इनके कारणस्वरूप पदार्थोंके समूहमें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

योगियोंका मन सदा शून्य रहता है ।।१६७।।

विषया: सर्वकालेऽपि तेषां संबन्धवर्तिन: ।
तेषां मूलं वपुर्ज्ञेयं तद्वपु: कर्मसंभवम् ।।१६८।।

अर्थ:- पंचेन्द्रियोंके विषय और सदा उनके सम्बन्धमें रहनेवाले जो पदार्थ हैं उन सबका मूल कारण शरीरको जानना चाहिए । यह शरीर कर्मसे उत्पन्न होता है ।

भावार्थ:- पंचेन्द्रियोंके विषयोंके वशीभूत हुआ प्राणी नाना पदार्थोंको एकत्रित करता है और उनके द्वारा भोगोपभोगोंमें निमग्न हो अनेक प्रकारके कर्मोंका बन्ध करता है । कर्मोंसे शरीर मिलता है, शरीर इन्द्रियोंका आवास है, इन्द्रियोंके वश हुआ भोगोपभोगको एकत्रित करता है । इसप्रकार इस जीवके कर्मबन्धका चक्र चलता रहता है । समस्त वस्तुओंके रागका मूलकारण शरीर सम्बन्धी राग है । इसीके रागसे प्रेरित हुआ जीव शरीरको सुख देनेवाले स्त्रीपुत्रादिक चेतन तथा धनधान्यादिक अचेतन पदार्थोंको एकत्रित करता है इसलिए सर्वप्रथम अपने शरीरका राग छोड़ना चाहिए । उसके छोड़नेपर सब पदार्थोंका राग स्वयं छूट जाता है ।।१६८।।

निश्चय: कर्मणां मोहदाज्ञानात्तस्य संग्रह: ।
तदज्ञानं भवत्यत्र रागद्वेषप्रभावत: ।।१६९।।

अर्थ:- मोह, मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद और कषायसे कर्मसमूहका बन्ध होता है । अज्ञानसे उन कर्मोंका संग्रह होता है अर्थात् उनमें स्थिति आदि पड़ती है और वह अज्ञान राग-द्वेषके प्रभावसे होता है ।

भावार्थ:- अज्ञानसे तात्पर्य मोह तथा राग-द्वेषसे दूषित ज्ञानसे है । मोह तथा राग-द्वेषसे रहित अल्पज्ञान भी हो तो उससे बन्ध नहीं होता किन्तु इनसे सहित अधिक ज्ञान भी हो तो वह बन्धका कारण होता है । परमार्थसे बन्धका कारण अज्ञान न होकर मोह और राग-द्वेष होता है ।।१६९।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अस्मिन्नपारसंसारसागरे मज्जतां सताम् ।
किं समालम्बनं साधो ! रागद्वेषपरिक्षयः ।।१७०।।

अर्थः- हे साधो ! इस अपार संसार-सागरमें डूबते हुए सत्पुरुषोंके लिए समीचीन आलम्बन क्या है ? राग-द्वेषका क्षय होना ही समीचीन आलम्बन है ।

भावार्थः- इस श्लोकमें प्रश्न और उत्तर दोनोंका समावेश किया गया है ।।१७०।।

रागद्वेषौ यदि स्यातां तपसा किं प्रयोजनम् ।
तावेव यदि न स्यातां तपसा किं प्रयोजनम् ।।१७१।।

अर्थः- यदि राग-द्वेष हो रहे हैं तो तपसे क्या प्रयोजन है ? और यदि वे नहीं हैं तो तपसे क्या प्रयोजन है ?

भावार्थः- राग-द्वेषके रहते कठिन तप भी कल्याणकारी नहीं है क्योंकि तप करनेपर भी राग-द्वेषके कारण कर्मबन्ध जारी रहता है और यदि राग-द्वेष नष्ट हो गये हैं तो तपश्चरणका उद्देश्य पूर्ण हो चुका अर्थात् कर्मबन्ध रुक गया अतः वह निष्प्रयोजन है ।।१७१।।

रागं हित्वा जिनो जातो वीतारागपदन्वितः ।
रागो द्वेषस्ततो जेयो मिथ्यात्वादिप्रमादकृत् ।।१७२।।

अर्थः- रागको जीतकर यह जीव वीतरागपदसे सहित जिनेन्द्र हो जाता है इसलिए मिथ्यात्व आदिको करनेवाला राग-द्वेष जीतनेके योग्य है ।

भावार्थः- दशम गुणस्थानके अन्तमें रागका समूल क्षय कर यह जीव बारहवें क्षीणमोह गुणस्थानमें पहुँचता है वहाँ अन्तर्मुहूर्त तक छद्मस्थ वीतरागदशाका अनुभव करता हुआ नियमसे केवलज्ञानका धारक जिनेन्द्र बन जाता है । तात्पर्य यह है कि संसार-भ्रमणका कारण राग-द्वेष है अतः अवश्य ही जीतना चाहिए ।।१७२।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लब्ध्वा त्वं वयोरूपविद्यादीन् दु:खत: परान् ।
कुमति: पातयत्येव प्रमादाद्भववारिधौ ।।१७३।।

अर्थ:- हे प्राणी ! यदि तू बड़े दु:खसे उत्तम अवस्थारूप तथा विद्या आदि परपदार्थोंको प्राप्त करता भी है तो कुमति-मिथ्याबुद्धि तुझे प्रमादसे संसाररूपी सागरमें नियमसे गिरा देती है ।।१७३।।

भवाम्भोधिमहावर्ते पतत्येव स्वयं तत: ।
कदा मुक्तिपदं सोपि निराबाधं प्रपद्यते ।।१७४।।

अर्थ:- उस दुर्बुद्धिके कारण यदि तू स्वयं संसार – सागरकी बड़ी भारी भंवर में पड़ गया तो फिर निर्बाध मुक्तिपदको कब प्राप्त होगा ?

भावार्थ:- उस भंवरसे निकलना दुर्भर हो जायेगा ।।१७४।।

ब्रह्मा विष्णुर्महेशश्च प्रमादादपरोऽपि च ।
पतिता भवपङ्केन यथा नास्ति विनिर्गम: ।।१७५।।

अर्थ:- ब्रह्मा विष्णु महेश तथा अन्य लोग भी प्रमादसे उस भवपंकमें उस प्रकार पड़े हैं कि जिससे निकलना सम्भव नहीं हो रहा है ।।१७५।।

प्रमादपरिमुक्तस्य यस्य चित्ते निरामये ।
परं ब्रह्म वसत्येव स एव तन्मयो मत: ।।१७६।।

अर्थ:- जिस प्रमादरहित मनुष्यके स्वस्थ चित्तमें परं ब्रह्म निवास कर रहा है वह नियमसे परं ब्रह्ममय माना गया है ।

भावार्थ:- शुद्ध आत्मारूप परं ब्रह्मका शुद्ध मनसे ध्यान करनेवाला मनुष्य नियमसे परं ब्रह्म अवस्थाको प्राप्त होता है ।।१७६।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तानि स्थानानि तीर्थानि बभूविर्जिनपुङ्गवाः ।
स्थिता येषु तथा सिद्धध्यानात् सिद्धो न किं नरः ।।१७७।।

अर्थः- जिसप्रकार जिनेन्द्र भगवान जिन स्थानोंमें स्थित रहे वे स्थान तीर्थ बन गये उसीप्रकार जिस पुरुषके मनमें सिद्ध परमेष्ठीका ध्यान होता है वह क्या सिद्ध नहीं बन सकता ? अर्थात् अवश्य बन सकता है ।।१७७।।

गच्छतस्तिष्ठतश्चापि जाग्रतः स्वपतोऽपि वा ।
यस्य साधोर्मनस्तस्मिन् सकलास्तस्य सद्गुणाः ।।१७८।।

अर्थः- जिस साधुका मन चलते, ठहरते, जागते और सोते हुए उन सिद्धपरमेष्ठीमें रहता है उसके समस्त गुण प्रकट होते हैं ।।१७८।।

यः पश्यति परात्मानं निर्मलज्ञानचक्षुषा ।
दूरीभवन्ति कर्माणि तस्य दर्शनमात्रतः ।।१७९।।

अर्थः- जो साधु निर्मल ज्ञानरूपी नेत्रके द्वारा परमात्माका दर्शन करता है उसके दर्शनमात्रसे कर्म दूर हो जाते हैं ।।१७९।।

गतीनां भ्रमणं नास्ति तस्य कर्मक्षयात्ततः ।
दुःखदायि यथा जीर्णं भोजनाभावतो न च ।।१८०।।

अर्थः- जिसप्रकार भोजनका परित्याग करनेसे दुःखदायक अजीर्ण स्वयं नष्ट हो जाता है उसी प्रकार कर्मोंका क्षय होनेसे चतुर्गतिका भ्रमण स्वयं नष्ट हो जाता है ।।१८०।।

कर्मबन्धः पृथक् तत्त्वं त्वममूर्तो निरत्ययः ।
त्वद् गुणेभ्योऽतिसंबाह्यो धत्ते प्रीतिं कथं त्वयि ।।१८१।।

अर्थः- कर्मबन्ध पृथक् तत्त्व है और तू निर्बाध अमूर्तिक पृथक् पदार्थ है । जब कि वह कर्मबन्ध तेरे गुणोंसे अत्यन्त बाह्य- सर्वथा पृथक् पदार्थ है तब वह तुझमें प्रीति कैसे रख सकता है ? ।।१८१।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यः पुमान् वीक्षते मोहादप्रिये प्रियसद्गुणान् ।
कालकूटान्महारौद्राद्वाञ्छत्येष स्वजीवितम् ॥१८२॥

अर्थः- जो पुरुष मोहवश अप्रिय - शत्रुमें प्रिय - मित्रके समीचीन गुणोंको देखता है वह अत्यन्त भयंकर कालकूट विषसे अपना जीवन चाहता है अर्थात् हलाहल विष पीकर जीवित रहनेकी इच्छा करता है ॥१८२॥

उदासीनत्वमालम्ब्यं मनागन्यत्र सर्वतः ।
तेनैव शाश्वतं सौख्यं लभते त्वभवं सकृत् ॥१८३॥

अर्थः- अन्य सब पदार्थोंमें कुछ उदासीनताका आलम्बन करना चाहिए क्योंकि उस उदासीनताके द्वारा ही यह जीव जन्मसे रहित शाश्वत सुख-मोक्षको एक बार प्राप्त होता है ।

भावार्थः- सांसारिक सुख तो बार बार प्राप्त होकर नष्ट होते रहते हैं परन्तु मोक्ष-सुख एक बार ही प्राप्त होता है और प्राप्त होकर फिर कभी नष्ट नहीं होता है ॥१८३॥

गुणो रागः सरूपञ्च यौवनं बलमुत्तमम् ।
संयमादिक्रिया विद्या बुद्धिर्वाचा विशेषतः ॥१८४॥
तस्यैतानि मनोज्ञानि मन्येऽहं भूतले त्रिधा ।
यस्यचित्तं लयं याति निष्कलंकेऽकलात्मनि ॥१८५॥

अर्थः- गुणानुराग, उत्तमरूप, यौवन, उत्तमबल, संयमादि क्रिया, विद्या, बुद्धि और वचन ये सब वस्तुएँ विशेषरूपसे उसीकी मनोज्ञ होती हैं जिसका कि चित्त कलंकातीत तथा शरीररहित सिद्ध परमेष्ठीमें कृत कारित अनुमोदनासे लयको प्राप्त होता है, ऐसा मैं मानता हूँ ॥१८४-१८५॥

विदित्वा पूर्वमध्यात्मं विश्वसेव्यं विशारदः ।
कोऽत्र मुह्यति संसारे पुद्गलादौ विनश्वरे ॥१८६॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ : ऐसा कौन विशारद - ज्ञानी पुरुष है जो सबके द्वारा सेवनीय अपूर्व अध्यात्मको जानकर इस विनश्वर पुद्गलादिरूप संसारमें मोहको प्राप्त होता है - उसे अपना मानता है ।।१८६।।

देहि देहस्थमात्मानं त्वं वै स्थित्वात्र चिन्तय ।
तेन मुक्तात्मना तुल्यं मुक्त्वा मोहं मुहुर्मुहुः ।।१८७।।

अर्थः- हे प्राणी! तू यहाँ बैठकर तथा मोहको छोड़कर बार बार उन सिद्ध परमात्माके समान अपने शरीरमें स्थित आत्माका चिन्तवन कर ।

भावार्थः- तू मोह छोड़कर तथा शान्तिसे बैठकर बार बार ऐसा विचार कर कि तेरे शरीरमें जो आत्मा रह रही है द्रव्यार्थिक नयसे वह सिद्धपरमेष्ठीके समान है । यद्यपि उसकी वर्तमानमें अशुद्ध पर्याय चल रही है परन्तु वह अशुद्ध पर्याय त्रैकालिक नहीं है मेरी आत्मामें भी सिद्ध बनने की क्षमता है अतः पुरुषार्थ करनेपर वह सिद्धपर्याय मेरी भी हो सकती है ।।१८७।।

ओंकारादिसुमन्त्रेषु कामदेषु निवासिना ।
निर्जिताशेषदोषेण जिनेन्द्रेण कृतार्थता ।।१८८।।

अर्थः- जो समस्त मनोरथोंको देनेवाले 'ओम्' आदि मन्त्रोंमें निवास करते हैं तथा जिन्होंने समस्त दोषोंको जीत लिया है ऐसे जिनेन्द्र भगवानके द्वारा कृतकृत्यता होती है ।

भावार्थः- जिनेन्द्रदेवकी शरण प्राप्त हो जानेसे यह जीव कृतकृत्य हो जाता है अर्थात् मुक्ति-सुखको प्राप्त हो जाता है ।।१८८।।

योगिनं त्रिजगन्मध्ये योगिनां ज्ञानगोचरम् ।
कर्मजिद्ध्यानमार्गेण ज्ञानरूपं विनिश्चलम् ।।१८९।।

अर्थः- तीनों लोकोंके मध्यमें उसे ही योगी जानो जो योगियोंके ज्ञानका विषय है, तथा कर्मको जीतनेवाले ध्यानके मार्गसे ज्ञानरूप निश्चल है ।।१८९।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

त्रिकालमिन्द्रियार्थेषु मनः शून्यं विधाय वै ।
ध्यायेद् यः परमात्मानं कोऽपि योगी निरत्ययम् ।।१९०।।

अर्थः- जो निश्चयसे तीनों कालमें इन्द्रियोंके विषयमें मनको शून्य कर परमात्माका निर्बाध ध्यान करता है वही कोई अनुपम योगी है ।।१९०।।

समुपैति स एवान्ते निर्वाणपदमव्ययम् ।
तत्क्षणाद्विगताधारं वीताक्षं हतकल्मषम् ।।१९१।।

अर्थः- वह योगी ही अन्तमें तत्काल उस निर्वाण पदको प्राप्त होता है जो अविनाशी है, निराधार है, अतीन्द्रिय है और निष्कलंक है ।।१९१।।

लभते नैव तत्तत्त्वं चिन्तितार्थप्रदं सदा ।
खलः किंचित्पुराहत्त्वा पुराणं निज लीलया ।।१९२।।

अर्थः- खल मनुष्य जबतक अनादिकालीन कालिमाको अपनी लीलासे पहले नष्ट नहीं कर लेता है तबतक वह सदा इच्छित पदार्थोंके देनेवाले उस शुद्धात्म तत्त्वको प्राप्त नहीं होता है ।

भावार्थः- शुद्धात्म तत्त्वकी प्राप्तिके लिए यह आवश्यक है कि जो कुछ भी पुरानी - अनादिकालीन कालिमा अपने हृदयमें विद्यमान है, उसे पहले नष्ट किया जाय । उसके नष्ट किये बिना उसका प्राप्त होना दुर्लभ है ।।१९२।।

विषतुल्यान् महापूर्वान् विषयान् प्राणनाशकान् ।
योऽधीमान् सेवते कश्चिद् भवाब्धौ सुखकांक्षया ।।१९३।।
तैर्दष्टो म्रियते किं न भूयो भूयः स एव हि ।
लब्ध्वा दुःखमहो तीव्रं भवकोटीं भवान्तरे ।।१९४।।

अर्थः- जो कोई मूर्ख इस संसार-सागरमें सुखकी इच्छासे विषके समान प्राणनाशक महान् विषयोंका सेवन करता है वही उन्हीं विषयोंके द्वारा डसा जाकर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संसारके बीच करोड़ों भव तक तीव्र दुःख प्राप्त करता हुआ क्या बार बार मरणको प्राप्त नहीं होता है ? अर्थात् अवश्य होता है ।।१९३-१९४।।

त्यक्त्वा तत्सङ्गमादाय जिनमुद्रां प्रमोदतः ।
ध्यात्वात्मानं महाशुद्धं भव्याः प्रापुः शिरश्रियम् ।।१९५।।

अर्थः- उन विषयोंका संग छोड़कर तथा हर्षपूर्वक जिनमुद्राको स्वीकृत कर अत्यन्त शुद्ध आत्माका ध्यान करते हुए भव्य जीव मोक्ष - लक्ष्मीको प्राप्त हुए है ।।१९५।।

ज्ञानमध्ये स्थितं तेषां प्रभूतं त्रिजगत्परम् ।
परमाणुरिवाजस्रं भाति सर्वं चराचरम् ।।१९६।।

अर्थः- उन मुक्तात्माओंके ज्ञानके मध्यमें स्थित यह चराचर समस्त त्रिभुवन निरन्तर परमाणुके समान जान पड़ता है ।

भावार्थः- उनके अनन्तानन्त अविभाग प्रतिच्छेदोंसे युक्त केवलज्ञानके भीतर यह त्रिभुवन एक परमाणुके समान प्रतिभासित होता है ।।१९६।।

सम्यक्त्वादेव मोक्तासि भवादात्मन्निति स्थिरम् ।
स्वात्मनि यन्मनः प्रोक्तं तत्सम्यक्त्वं मतं परम् ।।१९७।।

अर्थः- हे आत्मन् ! इसप्रकार यह निश्चित हुआ कि तुम सम्यक्त्वके द्वारा ही संसारसे मुक्त होओगे तथा अपने आत्मामें जो मनका लगाना है अर्थात् स्वकीय शुद्ध आत्माकी जो पर पदार्थसे भिन्न अनुभूति है वही श्रेष्ठ सम्यक्त्व माना गया है ।।१९७।।

तत्समं चापरं नास्ति श्रेयः किञ्चित्तनूभृताम् ।
मुक्तिदायि विदाराध्यं त्रैकाल्ये त्रिजगत्यपि ।।१९८।।

अर्थः- उस सम्यक्त्वके समान प्राणियोंका कल्याण करनेवाला, मुक्तिको

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देनेवाला तथा ज्ञानीजनोंके द्वारा आराधना करने योग्य दूसरा कोई भी पदार्थ तीनों काल और तीनों लोकोंमें भी नहीं है ।।१९८।।

समाधौसारमित्युक्तमात्मतत्त्वं सुखावहम् ।
त्रैविद्यसोमसेनेन न के ध्यायन्ति योगिनः ।।१९९।।

अर्थः- इसप्रकार त्रैविद्य सोमसेनके द्वारा कहे हुए समाधिके सारभूत सुखदायक आत्मतत्त्वका कौन योगी ध्यान नहीं करते हैं? अर्थात् सभी करते हैं ।।१९९।।

उपजाति

अर्थक्षयो यत्र न गात्रयष्टेः
कष्टं न किंचित् पुनरस्ति कोऽपि ।
परात्मसङ्गेन निजात्मबोध-
स्तमेव कुर्वन्तु शिवाय सन्तः ।।२००।।

इति श्री सोमसेनाचार्यविरचितं समाधिसारं समाप्तम् ।।

टीकाकर्तृ-निवेदनम्

इत्थं समाधिसारं रचितं त्रैविद्य सोमसेनेन ।
हिन्दीभाषाभिरलंकृतं व्यधायि प्रमोदतो लब्ध्वा ।।१।।
सन्मतिसागरसुगुरोरादेशं परमतत्त्वजिज्ञासोः ।
नागौरनगरमध्यादायातं भव्यजीवहितदक्षम् ।।२।।
पन्नालालेन मया सागरनगराधिवासिना नूनम् ।
गल्लीलालतनुभुवा जानकिमातुश्च चरमपुत्रेण ।।३।।
श्रावणकृष्णाष्टम्यां वारे सूर्यस्य सान्ध्यवेलायाम् ।
त्रितयाग्निनभो पंचक (२५०३) युगप्रमाणे गते हि वीराब्दे ।।४।।
बोधाय भवतु विदुषामात्मध्यानाभिलाषिणां नित्यं ।
याचे भूयो भूयः क्षमां त्रुटीनां कृते महाविज्ञान् ।।५।।

4680...

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कृपया सुधारकर पढ़ें

पृ. ११	पंक्ति	२१	विषय	विषमविषय
पृ. १६	पंक्ति	४	रन्त्तत्रयात्मा	रत्नत्रयात्मा
		१०	रन्त्तत्रयात्मा	रत्नत्रयात्मा
		२१	विशालकीर्थि	विशालकीर्ति
पृ. २७	पंक्ति	११	वायुंतदनु	वायुं तदनु
		१९	कथयतियोगी	कथयति योगी
पृ. २८	पंक्ति	१४	उन्हीं चारों नगरोंसे पृथ्वीमंडल, अपमंडल, तेजोमंडल और वायुमंडल इन चारों पवनोंकी	
पृ. २९	पंक्ति	१६	जीवन	जीव !
पृ. ३८	पंक्ति	१०	मातओं	माताओं
पृ. ४७	नीचे अंतिम		शद्धयति	शुद्धयति
पृ. ५३	श्लोक	४२	विसाले	विशाले
पृ. ५३	श्लोक	४४	देवेश्स्य	देवेशस्य
पृ. ५७	पंक्ति	१८	श्वसोच्छ्वास	श्वासोच्छ्वास
पृ. ५९	श्लोक	६५	शुणु	शृणु
पृ. ६०	श्लोक	७१	कात्रायातो	क्वात्रायातो
पृ. ६०	श्लोक	७२	नैर	नैव
पृ. ६०	श्लोक	७३	विषयागामिमिः	विषयागामिभिः
पृ. ६०	श्लोक	७४	कृतंचित्रं	कृतं चित्रं
पृ. ६१	श्लोक	७७	कार्य	कार्यं
पृ. ६१	श्लोक	७८	कचित्	क्वचित्
पृ. ७८	श्लोक	१४३	त्याजामन्द	त्यजामन्द
पृ. ७९	श्लोक	१४६	लेके	लोके
पृ. ८१	श्लोक	१५६	भरेन्नात्र	भवेन्नात्र
पृ. ८१	श्लोक	१५६ मेंही	जीर्मतृणं	जीर्णतृणं
पृ. ८२	पंक्ति	१७	सम्दाओंके	सम्पदाओंके
पृ. ८४	श्लोक	१६९	मोहदा	मोहाद
पृ. ८५	श्लोक	१७२	वीतारागपदन्वितः	वीतरागपदान्वितः
पृ. ९२	नीचे अंतिम पंक्ति		त्रुटींनां	त्रुटीनां
अंतिम टाइटलपर		पदपंक्ति ३	आतम पढ़	आगम पढ़
		पदपंक्ति ८	'सौहं'	'सोहं'

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैनों की प्रामाणिकता

एक दिन शाम की अन्थउ (रात्रि से पहले का भोजन) कर श्रीमद्जी शेठ त्रिभुवनदास भाणजी के साथ मुम्बई के चर्चगेट के पास बेण्ड स्टैण्डकी ओर घूमने गये ।

वहाँ पर घूमते-घूमते बहुत सी धर्म चर्चा के बाद त्रिभुवनदास भाई ने प्रश्न किया-

"एक जैन की प्रामाणिकता कैसी होनी चाहिये?"

उत्तर में श्रीमद्जी ने पास में स्थित मुम्बई हाईकोर्ट का ऊँचा शिखर दिखाते हुए कहा -

"वह दूर जो हाईकोर्ट दिख रहा है उसके अंदर बैठने वाले जज की जो प्रामाणिकता होती है उससे कम जैन की प्रामाणिकता तो नहीं ही होनी चाहिये । आशय यह कि जैनों की प्रामाणिकता इतनी अधिक होनी चाहिये कि उस विषय में किसी को जरा भी शंका न हो । इतना ही नहीं किन्तु यदी कोई कहे कि वह अप्रामाणिक है तो सुनने वाला इस बात को सच्चा न माने । उसकी प्रामाणिकता सर्वत्र इतनी अधिक प्रसिद्ध होनी चाहिये ।"

- प्रेरक प्रसंग

वह पुरुष नमन करने योग्य है,

कीर्तन करने योग्य है,

परम प्रेम पूर्वक गुणगान करने योग्य है ।

पुन : पुन : विशिष्ट आत्म परिणाम से ध्यान करने योग्य है

कि

जिस पुरुष को द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से और भाव से

किसी भी प्रकार की प्रतिबद्धता नहीं है ।

-श्रीमद् राजचंद्र

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

व्यापारी जीवन

''वणिक तेहनुं नाम, जेह जूठूं नव बोले,
वणिक तेहनुं नाम, तोल ओछुं नव तोले,
वणिक तेहनुं नाम बापे बोल्युं ते पाळे,
वणिक तेहनुं नाम व्याज सहित धन वाळे,
विवेक तोल ए वणिकनुं, सुलतान तोल ए शाव छे,
वेपार चूके जो वाणीओ, दुख दावानळ थाय छे ।।''

- सामळभट्ट

बनिया उसे कहते हैं जो कभी झूठ नही बोलता; बनिया उसे कहते हैं जो कम नहीं तोलता; बनिया उसका नाम है जो अपने पिता का वचन निभाता है ; बनिया उसका नाम है जो ब्याज सहित मूलधन चुकाता है । बनिये की कीमत विवेक है ; और राजा की कीमत मर्यादा पूर्वक चलने से है । यदि बनिया अपने बनिज को चूक जाय तो संसार की विपत्ति बढ़ जाय ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आतम अनुभव करना रे भाई।
जब लौं भेद-ज्ञान नहिं उपजै, जनम-मरण दुख भरना रे॥

आतम पढ़ नव तत्व बखानै, व्रत तप संजम धरना रे।
आतम-ज्ञान बिना नहिं कारज, जोनी संकट परना रे॥ १॥

सकल ग्रन्थ दीपक हैं भाई, मिथ्या-तमके हरना रे।
कहा करै ते अंध पुरुष को, जिन्हैं उपजना मरना रे॥ २॥

'द्यानत' जे भवि सुख चाहत हैं, तिनको यह अनुसरना रे।
'सोहं' ये दो अक्षर जपकै, भव-जल पार उतरना रे॥ ३॥

सन्मति ट्रस्ट
मुंबई

नरेन्द्र सदन, 4 माला, 36 डी, मुगभाट क्रास लेन,
ठाकुरद्वार, मुंबई - 400 004.
© 386 28 29

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi